श्री गोपीनाथजी प्रभुचरण

श्री गोपीनाथजी प्रभुचरण

मदनलाल भगवानदास नागर

जन्म : 11.11.1925 गोलोकवास 4-12-2009

इन्दौर ज्वेलर्स मदनलाल छगनलाल प्रतिष्ठान के संस्थापक, सराफा एसोसिएशन, इन्दौर के अध्यक्ष, म.प्र. सराफा एसोसिएशन के संयोजक, अखिल भारतीय विशा नागर भवन ट्रस्ट के संस्थापक ट्रस्टी एवं बाद में अध्यक्ष, सराफा विद्या निकेतन के संस्थापक सदस्य एवं संचालक मंडल के सदस्य बाद में अध्यक्ष, अन्तर्राष्ट्रीय पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद् के केन्द्रीय उपाध्यक्ष, परिषद् द्वारा संचालित श्री वल्लभ बाल विद्या निकेतन, झाबुआ के संयोजक एवं संचालन समिति के अध्यक्ष, गीता भवन इन्दौर के भंडारा समिति के संयोजक, पू.पा.गो. वल्लभरायजी (सूरत) के सोमयज्ञ एवं पू.पा.गो. इन्दिरा बेटीजी के भागवत सप्ताह कार्यक्रम के अध्यक्ष एवं संरक्षक, विशा नागर समाज के द्वारा 'ज्ञाति रत्न' की उपाधि से सम्मानित मदनलालजी नागर की स्मृति में नागर परिवार के जय श्रीकृष्ण।

श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभुजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथजी का प्राकट्य संवत् १५६८ (ई. सन् १५११) के आश्विन कृष्ण १२ को अड़ेल में हुआ था। आपके जन्म के बाद एक दिन ऐसा प्रसंग हुआ कि महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी श्री ठाकुरजी की सेवा कर रहे थे, उस समय आपश्री को यह प्रतीत हुआ कि शिशु आपकी पीठ का सहारा लेकर खड़ा हो रहा है। तब आपने अपनी धर्मपत्नी से कहा- 'आप शिशु को सँभालिए। भगवत्सेवा में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं होना चाहिए।' तब श्री महालक्ष्मीजी ने कहा- 'शिशु तो सो रहा है।' तब आचार्यश्री इसे प्रभु की लीला मानकर पुनः भगवत्सेवा में संलग्न हो गये।[३]

आठवें वर्ष में वि.सं. १५७५ में गोपीनाथजी का यज्ञोपवीत संस्कार काशी में संपन्न हुआ। श्रीमहाप्रभुजी ने आपको गायत्री मंत्र, गोपाल मंत्र तथा ब्रह्मसंबंध दीक्षाएँ दीं। आपका विद्याध्ययन श्री महाप्रभुजी के निर्देशन में हुआ। कहा जाता है

---

१. प्राकट्य तिथि संबंधी स्पष्टीकरण - चैत्र में वर्ष बदल जाने के कारण व्रज प्रथा के अनुसार वर्ष १५६८ आश्विन कृष्ण १२ तिथि होती है किन्तु गुजरात की प्रथा के अनुसार वर्ष कार्तिक में बदलता है अतः तदनुसार संवत् १५६७ रहेगा। गुर्जर मास की दृष्टि से भादरवा वद १२ श्री गोपीनाथजी के प्राकट्य की तिथि रहेगी। कवि जगतानन्द आपका प्राकट्य संवत् १५७० आश्विन वदी १० मानते हैं। हमने पुष्टि-सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार व्रज संवत् १५६८ आश्विन कृष्ण १२ (गुर्जर भादरवा वद १२ सं. १५६७) को ही आपश्री की प्राकट्य तिथि मानी है।

प्राकट्य स्थल - सामान्यतः पुष्टि संप्रदाय में यह माना जाता है कि गोपीनाथजी का प्राकट्य अड़ेल में हुआ था, किंतु श्री गिरधरजी के '१२० वचनामृत' में आपका प्राकट्य गुजरात के सिकन्दरपुर में हुआ, यह बताया गया है। इस मत को संप्रदाय में विशेष मान्यता नहीं मिली है।

गो. गोपीनाथजी के पंच शताब्दी पर्व पर प्रा. लक्ष्मीनारायण शर्मा, सौ. उमा शर्मा एवं राधा (अकोला) के सप्रेम जयश्रीकृष्ण (आ. धर्मसेवा १)

कि आपको दर्शनशास्त्र के प्रकांड विद्वान् मधुसूदन सरस्वती ने भी दर्शनशास्त्र का अध्ययन करवाया था। आपने वेद-उपनिद्, ब्रह्मसूत्रों के विभिन्न भाष्यों, श्रीमद् भगवद् गीता एवं श्रीमद् भागवत का गहन अध्ययन किया। आपने श्री महाप्रभुजी के ग्रंथों का अध्ययन भी सूक्ष्मत: एवं गहराई से किया। आप श्री महाप्रभुजी के वचनों को परम प्रमाण मानते थे।

भावना और मर्यादा का समन्वय

गोपीनाथजी श्री ठाकुरजी की सेवा में भी गहरी रुचि लेते थे। इसमें उन्हें श्री महाप्रभुजी का मार्गदर्शन बराबर मिलता था। एक बार शीतकाल का समय था। गोपीनाथजी स्नान करके पधारे। तब श्री महाप्रभुजी ने उन्हें आज्ञा दी- 'मंदिर में जाकर श्री ठाकुरजी को प्रेमपूर्वक जगाओ।' गोपीनाथजी मंदिर में गये, वहाँ जाकर आपने देखा कि श्री ठाकुरजी गहरी नींद में सोये हैं। वे क्षणभर सोचते रहे कि मुझे अब क्या करना चाहिए। अन्तत: उन्होंने श्री ठाकुरजी की नींद में व्यवधान डालना उचित नहीं समझा और चुपचाप मंदिर के बाहर आ गये। आपको बाहर आते देखकर श्री महाप्रभुजी ने पूछा- 'क्या हुआ ? श्री ठाकुरजी को जगाये बिना ही मंदिर से बाहर क्यों आ गये?' आपने उत्तर दिया- 'श्री ठाकुरजी गहरी निद्रा में पोढे हैं, इसलिए मैं लौट आया।' गोपीनाथजी के ठाकुरजी के प्रति दिव्य भाव को देखकर श्री महाप्रभुजी बहुत प्रसन्न हुए किंतु आपश्री ने कहा- 'तुम्हारा भाव ठीक है परंतु यह मर्यादा है कि श्री ठाकुरजी को सूर्योदय के पूर्व जगाना चाहिए इसलिए आप फिर से मंदिर में जाइए। वह क्षणभर खड़े रहिए। यदि श्री ठाकुरजी की नींद न खुले तो ताली बजाकर श्रीजी को जगाइए।' श्री गोपीनाथजी को दिशा मिल गई कि सेवा में और जीवन में मर्यादा और भावना का विवेकपूर्ण समन्वय होना चाहिए। आपश्री ने अपने ग्रंथ 'साधन दीपिका' में भावना और मर्यादा का समुचित समन्वय प्रस्तुत किया है।

राठी परिवार (इन्दौर, कटक, दिल्ली, जयपुर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण (आ. धर्मसेवा -२)

श्रीमद्भागवत के प्रति विशेष भाव

श्रीमद्भागवत के प्रति आपके मन में बहुत अनुराग और आदर था। संपूर्ण भागवत का पाठ करने के बाद ही आप भोजन करते थे। इसी कारण आपको कई बार उपवास भी करना पड़ता था। सम्पूर्ण भागवत के पाठ के कारण भगवत्सेवा के लिए भी पर्याप्त समय नहीं मिल पाता था। आपके भोजन की अनियमितता से माताजी अक्काजी को भी बहुत वेदना होती थी। उन्होंने आचार्यश्री के सम्मुख यह समस्या रखी। तब आचार्यश्री ने गोपीनाथजी को स्वरचित 'पुरुषोत्तमसहस्रनाम' देते हुए आज्ञा की - 'आप प्रतिदिन 'पुरुषोत्तसहस्रनाम' का पाठ करके महाप्रसाद ले लिया करें। इसके पाठ से संपूर्ण श्रीमद् भागवत के पाठ का फल मिल जाएगा।' गोपीनाथजी ने इसके बाद नित्य पुरुषोत्तमसहस्रनाम का पाठ करके भोजन करने का नियम बना लिया।

विवाह एवं संतति

संवत् १५८२ में आपका विवाह पायम्मागारु (प्रियाजी) के साथ संपन्न हुआ। आपश्री के एक पुत्र श्री पुरुषोत्तमजी एवं दो पुत्रियाँ -श्री सत्यभामा बेटीजी और श्री लक्ष्मी बेटीजी हुईं।

भगवत्-द्रव्य खाने से वंश निर्मूल

श्री आचार्यजी महाप्रभु के सेवक थे दामोदरदास सम्भलवाले। उनका गोलोकवास हो जाने पर उनकी पत्नी वीरबाई ने अपने सेव्यस्वरूप श्रीद्वारकाधीशजी तथा उनकी सेवा-शृंगार की बहुमूल्य सामग्री नाव के द्वारा अडेल भेज दी। एक वैष्णव ने जाकर आचार्यश्री से विनती की कि श्री द्वारकाधीशजी वैभव के साथ पधारे हैं। तब गोपीनाथजी वहीं थे। उन्होंने आचार्यश्री से विनती की -'महाराज ! श्री द्वारकाधीशजी को अपने घर में पधराइए।' तब श्री आचार्यश्री ने सोचा कि गोपीनाथजी के इस कथन का उपस्थित वैष्णवों पर यह प्रभाव न हो कि ये वैभव के लोभ में द्वारकाधीशजी को घर में पधराने के लिए आग्रह कर रहे हैं अत: आचार्यश्री

प्रभा इन्दरकुमार बिनानी एवं दुर्गादेवी देवकिशन कोठारी (मुंबई)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण (आ. धर्मसेवा -३)

ने गोपीनाथजी से पूछा - 'क्या आपको श्री द्वारकाधीशजी के बहुमूल्य पात्र-सामग्री-आभूषण आदि देखकर लोभ हो गया है।' तब श्री गोपीनाथजी ने उत्तर दिया- 'महाराज! आपके वंश में जो प्रकट होगा, वह तो लोभ नहीं करेगा। हमारे मन में तो श्री द्वारकानाथजी की सेवा करने की इच्छा हो रही है, इसी कारण आपसे यह विनती की थी।' तब सभी वैष्णवों को सुनाते हुए आचार्यश्री ने आज्ञा की- ''मेरे वंश में या मेरा कहा कर जो कोई भगवद्द्रव्य खाएगा, उसका वंश निर्मूल हो जाएगा। यह मेरी आज्ञा है।''

श्री मदनमोहनजी का पाटोत्सव

विवाह के बाद श्री गोपीनाथजी ने संवत् १५८२ में द्वारका-यात्रा की। उस समय आपने असारवा (अहमदाबाद) में साठोदरा नागर जयकृष्ण भट्ट की गृहवाटिका में निवास किया। उस समय आपके साथ हरिवंशजी भी थे। तब भाईला कोठारी, विकुबाई आदि वैष्णवों ने भी आपके दर्शन किये तथा वचनामृत का पान किया। रात्रि में श्री मदनमोहनजी प्रभु ने स्वप्न में आपको आज्ञा की- 'मैं इस बगीचे की बावड़ी में हूँ। आप मुझे बाहर पधराकर मेरी सेवा आरंभ कराइए।' प्रात:काल उठकर श्री गोपीनाथजी ने श्री मदनमोहन प्रभु को कुए से बाहर पधराया। उनके प्राकट्य पर बड़ा उत्सव मनाया गया। बाद में रामदास सांचोरा की विनती को स्वीकार कर उनके माथे ठाकुरजी श्री मदनमोहनजी तथा अपनी पादुका भी सेवा के लिए पधरायी। इसके बाद आप द्वारका पधारे। वहाँ एक माह तक विराजे।

श्री महाप्रभुजी की अंतिम शिक्षा

आचार्यजी महाप्रभु वि.सं. १५८७ में भगवद्धाम वापस पधारने की इच्छा से त्रिदंड संन्यास लेकर काशी पधारे। तब गोपीनाथजी अपने छोटे भाई विट्ठलनाथजी और परिवारजनों, कुटुम्बियों तथा महाप्रभुजी के सेवकों के साथ काशी आये। आपने आचार्यश्री से विनती की कि हमें उपदेश दीजिए। आचार्यश्री मौन धारण कर

सौ. प्रभावती मनोहरलाल अग्रवाल (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण। (आ. धर्मसेवा-४)

चुके थे अत: आपश्री ने गंगाजी की रेती पर साढ़े तीन श्लोक लिखे, जो कि 'शिक्षा श्लोक' के नाम से प्रख्यात हैं। इन श्लोकों में आपने अपने पुत्रों, वंशजों और सेवकों के लिए शिक्षा दी है।

आचार्य के रूप में प्रथम प्रवास : पहली भेंट श्रीनाथजी को

श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभु के स्वधाम पधारने के बाद श्री गोपीनाथजी ने पुष्टिमार्ग के आचार्य के रूप में पुष्टि-भक्ति के प्रचार-प्रसार के लिए द्वारका, गुजरात, सिंध आदि स्थानों की यात्रा की। इस यात्रा में गुरु-भेंट के रूप में आपश्री एक लाख रुपये प्राप्त हुए। यह सम्पूर्ण राशि आपने श्रीनाथजी की सेवा में समर्पित की, जिससे श्रीजी के आभरण, पात्र आदि सिद्ध किये गये। आपने आचार्य के रूप में पुष्टिमार्ग के संरक्षण प्रचार-प्रसार का कार्य किया।

तीर्थपुरोहित को वृत्ति पत्र

संवत् १५९५ में गोपीनाथजी ने जगन्नाथपुरी की यात्रा की। इस यात्रा में आपने वंश - परंपरागत वृद्ध पुरोहित कृष्णसेवक (कृष्णदास) गुच्छिकार से सं. १५४५ में श्रीवल्लभाचार्यजी के जगन्नाथपुरी आगमन एवं मंदिर में हुए शास्त्रार्थ का पूर्व वृत्तांत भी सुना। इसके बाद आपने उन्हें वैशाख मास की अमावस्या के दिन वृत्तिपत्र लिखा, जिसमें श्री महाप्रभुजी के उक्त वृत्तांत का भी उल्लेख किया गया था। इसी प्रकार आपने संवत् १५९५ वैशाख सुदी ५ को वाराणसी (काशी) के देवीदास उपाध्याय को भी तीर्थ पुरोहित के रूप में सम्मानित किया था।

सोमयज्ञ एवं पुरश्चरण

पुष्टिभक्ति का प्रचार करते हुए गोपीनाथजी व्रज में पधारे, फिर वहाँ से अड़ेल पधारे। आपने अड़ेल में सोमयज्ञ किया, फिर विष्णुयज्ञ किया। आपने गोपाल मंत्र का पुरश्चरण भी किया था। तत्पश्चात् आपने पुन: गुजरात, द्वारका और सिंध की यात्रा की।

सौ. सपना गोविन्द एवं सौ. अनामिका राजेश अग्रवाल (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण (आ. धर्मसेवा-५)

भगवत्स्वरूप के प्रति सम्मान

एक बार गोपीनाथजी आगरा पधारे तब आगरा के वैष्णवों ने आपको गुसाँईजी विट्ठलनाथजी के लिए भी भेंट दी। यह राशि एक सौ मोहर की थी। तब श्री गोपीनाथजी ने पूछा- 'ऐसा कोई वैष्णव है, जो कि यह भेंट राशि अड़ेल जाकर विट्ठलनाथजी को पहुँचा दे।' उस समय वासुदेवदास छकड़ा सिंहनद से आगरा आये हुए थे। उन्होने मोहरें गुसाँई तक पहुँचाने का दायित्व लिया। तब गोपीनाथजी ने गुसाँईजी को एक पत्र लिखकर वासुदेवदास छकड़ा को दिया तथा सौ मोहरें भी दीं। वासुदेवदास छकड़ा ने वैरागी का वेश धारण किया तथा मोहरों को लाख का गोला बनाकर उसमें रख लिया। उसे शालिग्राम के समान चंदन चढ़ाकर पूजा करते हुए वे अड़ेल पहुँच गये। वहाँ जाकर लाख के गोले में से मोहरें निकालीं और गोपीनाथजी के पत्र के साथ मोहरें भी श्रीगुसाँईजी के सम्मुख रख दीं। श्री गुसाँईजी ने गोपीनाथजी का पत्र पढ़ा और भंडारी को बुलाकर उसे मोहरें सौंप दीं। वासुदेवदास छकड़ा गुसाँईजी के द्वारा लिखे गये मोहरों की प्राप्ति का पत्र लेकर दूसरे दिन आगरा रवाना हुए। आगरा जाकर उन्होने गोपीनाथजी को गुसाँईजी का पत्र सौंप दिया। गोपीनाथजी पत्र पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए। फिर आपने पूछा- 'इतनी मोहरें तुम कैसे ले गये थे?' वासुदेवदास ने पूरा विवरण सुनाया। विवरण सुनकर गोपीनाथजी ने कहा- 'ऐसा नहीं करना चाहिए।' आपश्री का आशय था कि भगवत्स्वरूप बनाकर फिर उसे खंडित करना अनुचित है। यह सुनकर वासुदेवदास ने विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़े और चुप रहकर आचार्यश्री की आज्ञा शिरोधार्य की।

विरक्ति का आदर्श

गोपीनाथजी स्वभाव से विरक्त थे। वे शांति और विरक्ति को वैष्णवता के आंतरिक लक्षण मानते थे। अपनी 'साधन दीपिका' में आपने इस पर विशेष बल दिया है। आपके जीवन में ये दोनों गुण सहज ही थे। श्री बालकृष्ण शुद्धाद्वैत महासभा द्वारा वि.सं. २०२९ में 'श्रीवल्लभाचार्य तथा आपश्री के वंशजों की

पिताश्री प्यारेलालजी, दादाजी सुन्दरलालजी एवं धर्मपिता लालचन्दजी स्मृति में मनोहरलाल अग्रवाल (धार) के सप्रेम जयश्रीकृष्ण। (आ. धर्मसेवा-६)

जगदीशजी की यात्राएँ' पुस्तक उड़िया लिपि में ४५० वर्ष पूर्व उड़िया लिपि में लिखे गये ताडपत्रों के आधार पर हिन्दी तथा अंग्रेजी में प्रकाशित की गई है। यह 'मदलापज्जि' (पंजिका) वहाँ के राजा गजपति के आदेश से लिखी जाने वाली 'विजिटर्स बुक' है। इसमें श्री गोपीनाथजी की जगदीश-यात्रा का विवरण मिलता है। तदनुसार जब गोपीनाथजी ने जगदीशपुरी की यात्रा की थी उस समय वहाँ भयानक अकाल पड़ा था। स्थिति ऐसी बिगड़ गई थी कि मनुष्य ही मनुष्य का मांस खाने लगा था। उस समय राजा ने आपश्री का स्वागत किया तथा आपके निवास का प्रबंध फलाहारी मठ में किया गया। आपश्री को अकाल के संबंध में जानकारी दी गई। आपने शीघ्र वर्षा होने की बात कही। गोपीनाथजी के यह कहते ही वर्षा होने लगी। अकाल दूर हुआ। सुकाल आ गया। हैजा भी समाप्त हो गया। राजा ने आपसे निवेदन किया कि 'भूमि ग्रहण कर यहाँ मठ स्थापित करें।' आपश्री ने जवाब दिया- 'हम तो यहाँ से चले जाएँगे अत: भूमि लेकर क्या करेंगे ? इसे किसी ब्राह्मण को दे दें।' राजा ने भेंट स्वीकार करने की प्रार्थना की। तब आचार्यश्री ने उत्तर दिया -'हमें वित्त से क्या प्रयोजन है? हमें श्री गोकुलचंद्र ने सब कुछ दिया है।' तब राजा ने बहुमूल्य वस्त्र समर्पित कर आपश्री का सम्मान किया तथा नगर में शोभायात्रा निकाली। आपने राजसभा में धर्म-व्याख्यान भी दिया।

■

जिनके हृदयों में आचार्यश्री के चरण विराजते हैं,
उन्हीं के हृदयों में प्रभु स्थिर वास करते हैं

जिनके हृदयों में श्रीमद्वल्लभाचार्य के चरण-कमल स्थिर रूप से विराजते हैं, उन्हीं के हृदयों में राधिका कान्त प्रभुश्रीकृष्ण अच्छी तरह से स्थिर होकर वास करते हैं। अतः पितृचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के चरण-कमलों का भजन ही सर्वथा उचित है। मेरा यही मत है कि उत्तम कोटि के भगवदीयों के लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई कर्म नहीं है। (नित्यसेवाविधि-९७,९८)

श्रीमती तुलसी सतीशचंद्रजी सरदाना (अजमेर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण (आ. धर्मसेवा-७)

गोपीनाथजी की रचनाएँ

साधन दीपिका

गोपीनाथजी संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। आपने अनेक ग्रंथ लिखे होंगे किंतु वर्तमान में आपका एकमात्र ग्रंथ 'साधन दीपिका' ही उपलब्ध है। इस ग्रंथ में आपने पुष्टिमार्ग के साधनापक्ष को स्पष्ट किया है। इस ग्रंथ में श्री महाप्रभुजी के ग्रंथों के आधार पर, विशेष रूप से आपने 'सर्व निर्णय ग्रंथ' का आश्रय लेते हुए, पुष्टिमार्गीय जीवन एवं साधना के स्वरूप का विवेचन किया है।

प्रा.डा. भगवत्प्रसाद पंड्या का मत है कि 'साधन दीपिका' पुष्टि सम्प्रदाय का बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसे पुष्टिमार्ग की आचार संहिता माना जा सकता है। श्रीनाथद्वारा और श्रीवल्लभकुल के निजगृहों में यही प्रणालिका अधिकतर इसी के आधार पर चल रही है। इसमें सम्प्रदाय की सेवा-प्रणाली तथा सिद्धान्तों की चर्चा की गयी है और सेवा द्वारा प्रभु-प्राप्ति, मुक्ति, भगवद्दर्शन, प्रपत्ति किस प्रकार प्राप्त हो, इसका सुन्दर निरूपण किया गया है।[१]

नित्य एवं उत्सव सेवा-विधि श्लोक

नित्य एवं उत्सव विधि के श्लोक सामान्यत: श्री गोपीनाथप्रभुचरणविरचित माने जाते हैं किंतु गो. श्री शरदजी ने यह स्पष्ट किया है कि संभवत: श्रोत परंपरा से श्री गोपीनाथप्रभुचरणों को महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यचरणों से उल्लिखित सेवा श्लोक प्राप्त हुए होंगे। इनमें शीर्षकों के रूप में गद्य में विधि-अंशों को जोड़कर आपने शेष सेवा-विधि को पूर्ण किया होगा। बाद में श्री विट्ठलनाथजी प्रभुचरणों ने भी उसमें कुछ आवश्यक अंशों को जोड़ा होगा। यही स्थिति उत्सव सेवा-विधि के श्लोकों के संबंध में है। इन सेवा-विधि के श्लोकों में कुछ स्वरचित श्लोक श्री गोपेश्वरजी तथा श्री व्रजराजजी ने भी जोड़े हैं, ऐसा प्रतीत होता है।

---

१. साधनदीपिका - प्रस्तावना

डॉ. मधुरिमा तुली एवं डॉ. राजेश तुली (जीवकोरनगर)
सूरत के सप्रेम जयश्रीकृष्ण। (आ. धर्मसेवा ८)

नित्य एवं उत्सव सेवाभावना एवं सेवाविधि पर एकमात्र संस्कृत व्याख्या संप्रदाय के मूर्धन्य व्याख्याकार श्री गोपेश्वरचरणों की उपलब्ध है। गो. शरदजी लिखते हैं- 'आश्चर्य होता है कि भगवत्सेवा जैसे महत्वपूर्ण विषय पर आचार्यचरणों की कारिकाएँ होने पर भी उन पर श्री गोपेश्वरजी को छोड़कर अन्य किन्हीं पूर्वाचार्यों की विवृति क्यों उपलब्ध नहीं होती!'

सेवाविधि के श्लोकों में से कौन-से श्लोक किन आचार्यचरणों के हैं, इस विषय पर अधिक शोध कार्य होना चाहिए। यह तो निश्चित ही है कि इसमें अधिकतर श्लोक श्री गोपीनाथजी के द्वारा रचित हैं।

नित्यलीला प्रवेश

मातुश्री से अनुमति प्राप्त कर आप जगदीशपुरी पधारे। तब आपके साथ राघवदास नाम का वैष्णव था। कहा जाता है कि आप श्री जगदीशजी के श्रीविग्रह में लीन हो गये। आपके नित्यलीला प्रवेश के वर्ष के संबंध में विभिन्न मत मिलते हैं। एक मत के अनुसार आपका नित्यलीला प्रवेश संवत् १५९९, अन्य मत के अनुसार १६०० और एक मत के अनुसार १६२० में माना जाता है। श्री नंदकिशोर खंघडीया श्रीगुसाँईजी के द्वारा श्रीगोपीनाथजी को लिखे गये पत्र में उल्लेखित भगवत्स्वरूपों में मथुरानाथजी के गुसाँईजी के घर पधारने के वर्ष का निर्धारण करते हुए तार्किक ढंग से श्रीगोपीनाथजी के लीला प्रवेश का वर्ष वि.सं. १६२४ मानते हैं। इस सन्दर्भ में अभी और सहयोगी प्रमाणों की आवश्यकता प्रतीत होती है। ऐसा कोई स्पष्ट एवं विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता जिससे कि आपश्री के नित्यलीला प्रवेश का निश्चयात्मक रूप से निर्धारण हो सके। हमें इनमें से वि.सं. १६२० में आपश्री का लीला प्रवेश होना उपयुक्त प्रतीत होता है।

आपके लीला-प्रवेश के बाद आपकी बहूजी पायम्मागारुजी मायके पधार गयीं किन्तु आपकी दोनों बेटीजी श्रीगुसाँई जी के पास ही रहीं। उन्होंने उनका लालन-पालन अपनी पुत्रियों के समान ही स्नेहपूर्वक किया। दोनों पुत्रियाँ भी श्रीगुसाँईजी के प्रति पितृवत् आदरभाव रखती थीं। ■

विवेक चन्द्रभूषण नीमा एवं सौ. श्रीया नीमा (बर्न-स्वीटजरलैंड)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण। (आ. धर्मसेवा-९)

श्री महाप्रभुजी एवं श्री गोपीनाथजी

श्री गोपीनाथजी श्रीमद्वल्लभाचार्यजी महाप्रभु के ज्येष्ठ पुत्र थे। आपश्री महाप्रभुजी के चरणों की रज को ही अपने लिए कल्पवृक्ष एवं कामधेनु के समान सब मनोरथों की पूर्ति करने वाले मानते हैं। (सा.दी.१) आपका सुदृढ़ विश्वास था कि श्री महाप्रभुजी वैश्वानर अग्नि (हुताशन) रूप थे। आपश्री का भूतल पर प्राकट्य भक्तिमार्ग के प्रचार-प्रसार के लिए ही हुआ था। गोपीनाथजी महाप्रभुजी के वाक्यों को सर्वोत्कृष्ट प्रमाण मानते थे। उनकी दृष्टि में अन्य सभी प्रमाण उनकी तुलना में गौण प्रमाण (अंगभूत) थे। श्रीमद् महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने वेद, श्रीमद् भगवत् गीता, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद् भागवत रूप चतुष्टय को प्रमाण माना है (शा.प्र.७) तद्नुसार गोपीनाथजी ने भी प्रस्थान चतुष्टयी की प्रामाणिकता को स्वीकार करते हुए ब्रह्मसूत्रों के संदर्भ में श्रीमहाप्रभुजी के अणुभाष्य की ओर भी संकेत किया है। वे ब्रह्मसूत्रों के अनेक भाष्यों में से अणुभाष्य को परम प्रमाण मानते हैं। गोपीनाथजी ने इन्हीं प्रमाण ग्रंथों के अनुसार ही अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'साधनदीपिका' की रचना की है। आपने इस ग्रंथ में श्री महाप्रभुजी के अनेक ग्रंथों के उद्धरण देकर अपने सिद्धांतों की प्रमाणिकता और उनके श्री महाप्रभुजी-सम्मत होने की पुष्टि की है। श्री महाप्रभुजी के वचनों को कुछ स्थलों पर ज्यों के त्यों शब्दशः प्रस्तुत न करते हुए श्री महाप्रभुजी-सम्मत भावों और सिद्धांतों के अनुरूप ही साधना-पद्धति प्रस्तुत की है। गोपीनाथजी ने श्री महाप्रभुजी के शास्त्रार्थ प्रकरण, सर्वनिर्णय, बालबोध, सिद्धांतरहस्य, कृष्णाश्रय, भक्तिवर्धिनी, निरोधलक्षण, चतुःश्लोकी, नवरत्न, पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा-भेद, विवेकधैर्याश्रय आदि ग्रंथों के संदर्भ दिये हैं अथवा इन ग्रंथों की पंक्तियों से भावसाम्य आपके कथन में मिलता है। यह कहना उचित ही होगा कि पूरा साधनदीपका ग्रंथ ही श्री महाप्रभुजी के सिद्धांतों के अनुसार रचा गया है। दशदिगंतविजयी गो. श्री पुरुषोत्तमजी ने गोपीनाथजी को 'श्री वल्लभ प्रतिनिधि' उचित ही कहा है। ■

नोट : पूरी पुस्तक में जो संदर्भ दिये गये हैं वह संख्या 'साधनदीपिका' की श्लोक संख्या है।

गो.वा. चम्पालालजी एवं श्रीमती मथुरादेवी राठी की पुण्य स्मृति में राठी परिवार (दिल्ली-जयपुर) के सप्रेम जयश्रीकृष्ण (आ. धर्मसेवा-१०)

सैद्धांतिक पीठिका- शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद

'साधन दीपिका' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, प्रभु-प्राप्ति का उपाय बताने वाला ग्रंथ है। उसकी वैचारिक पीठिका महाप्रभुजी का शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद ही है। श्री गोपीनाथजी स्पष्ट रूप से बताते हैं कि सृष्टि के कर्ता केवल भगवान ही हैं। भगवान ने ही अपने आप में से सृष्टि बनाई है। उन्होंने सृष्टि की रचना में किसी वस्तु या साधन का करण-उपकरण रूप में उपयोग नहीं किया है। सृष्टि के पूर्व अन्य कुछ था ही नहीं अत: भगवान् ही सृष्टि रूप हो गये हैं। यह संपूर्ण जगत भगवान के द्वारा रचित है। भगवान ही जगत रूप हुए हैं। अत: संपूर्ण जगत भगवान् रूप ही है - 'असृजत पूर्वं स्वात्मना स्वात्मकं जगत्।' (सा.दी.५२)

भगवान ने प्रपंच (जगत) अपनी क्रीड़ा के लिए प्रकट किया है। इसमें अनेक प्रकार की रचनाएँ हैं, उनमें सबसे उत्तम सृष्टि है पुष्टि जीवों की। यह प्रभु की लीला सृष्टि है अर्थात् पुष्टि-सृष्टि उन जीवों की है जो जीव प्रभु की नित्य लीला के हैं। पुष्टि जीवों को भगवान ने अपनी काया से, श्रीअंग से प्रकट किया है। पुष्टि जीव को प्रभु ने भजनानंद का दान करने के लिए अपने वाम अंश से प्रकट किया है। उनके लिए प्रभु के द्वारा वरण किया जाना ही सर्वोपरि है। प्रभु जिस पर अनुग्रह करते हैं, वह लोक और वेद में अपनी बुद्धि का लगाव, निष्ठा छोड़ देता है। (५३, ५७) वह प्रभु की अनन्य भाव से शरण लेकर अपना सब कुछ प्रभु को समर्पित कर देता है। जब शरणागत जीव भगवान से अनंतकाल से हुए अपने वियोग-ताप का स्मरण करता है तब वह इष्ट यज्ञ, दान, तप, जप, व्रत आदि कर्म तथा स्त्री, पुत्र, घर, प्राण आदि सब कुछ भगवान को समर्पित कर प्रभु के नाम-गुण-मंत्र का ही आश्रय लेता है। वह वैष्णव (भागवत) धर्म का पालन करते हुए पुष्टिभक्तिमार्ग की रीति से भगवान् का भजन (सेवा) करता है। (५६ से ५९) पुष्टिभक्तों के लिए इससे भिन्न कोई साधना-पद्धति नहीं है-

श्रीमती कला चौधरी एवं महेशचन्द्र चौधरी (जयपुर)
के सप्रेम जय श्रीकृष्ण (आ.धर्मसेवा-११)

वामांश-सम्भवानान्तु भजनानन्दलब्धये ।
विसृष्टानां ततोन्येषां नान्या साधनपद्धतिः ।। (५३)

समर्पित पुष्टिभक्त अवैष्णवों के संग से दूर रहकर भक्तिशास्त्र में भगवद् भक्तों के लिए जो आचार निरूपित किये गये हैं, उनका अनुसरण करे। इसके अतिरिक्त अन्य कोई आचरण पुष्टि भक्त के लिए इष्ट सिद्धि प्रदान करने वाला नहीं है। (साधन दीपिका १२७)। यही साधनदीपिका की सैद्धांतिक पीठिका है।

■

आश्विन वदि द्वादशी सुभग दिन श्रीलक्ष्मन सुतके सुत जायो ।।
हलधररूप देखि श्रीवल्लभ महागणिक बुलवायो ।।१।।
लग्न सुधाय सबे ग्रह सुन्दर मन-ही-मन अति हरख बढायो ।।
कुल प्रोहित बुलवाय हरखसों स्वस्तिवाचन पढवायो ।।२।।
जातकर्म अरु नामकरण करि 'श्रीगोपीनाथ' नाम धरवायो ।।
देत असीस विप्र मन्त्रन पढि श्रीवल्लभ दीनो मन भायो ।।३।।
किये अजाचक गुणिनकों मनवाञ्छित पूरन करवायो ।।
अति उदार श्रीलक्ष्मणनन्दन देत सबन मन भायो ।।४।।
श्री अड़ेलपुर में अति आनंद उमग्यो नाहिं समायो ।।
वरख्यो आप चरण अद्रिपर अनत न काहू पायो ।।५।।
घर-घर तोरण बन्दनमाला जय-जय धुनि उपजायो ।।
रसिकदास अति दीन-हीनमति कहा जाने जस गायो ।।६।।

ठाकुरदास मूँदड़ा एवं सौ. बरजीदेवी मूँदड़ा (कोलकाता)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण (आ.धर्मसेवा-१२)

गुरु और गुरुसेवा

श्रीगोपीनाथजी श्रीमहाप्रभुजी के वचनों का प्रमाण देकर स्पष्ट करते हैं कि माहात्म्यज्ञानपूर्वक प्रभु में सबसे बढ़कर (सर्वतोधिक) एवं सुदृढ़ स्नेह ही भक्ति है। ऐसी भक्ति से ही मुक्ति मिलती है, इसी से जीव कृतार्थ-कृतकृत्य होता है। भगवान् की महिमा का ज्ञान शास्त्रों से होता है किंतु शास्त्रों का तत्त्व कौन समझाए? इस ज्ञान के लिए गुरु आवश्यक है। किंतु गुरु कौन होना चाहिए ? इस संदर्भ में भी गोपीनाथजी श्रीमहाप्रभुजी के वचनों को ही उद्धृत करते हैं कि गुरु प्रभु श्रीकृष्ण की सेवा में परायण होना चाहिए। उसका जीवन सहज हो, वह पूरी तरह से दम्भ-पाखंड से रहित हो। इसके साथ ही उसे श्रीमद्भागवत के तत्त्व का, रहस्य का, गूढभावों का सम्यक् ज्ञान हो। महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजी ने अपनी सुबोधिनी टीका में भागवत के तत्त्व को, गूढार्थ को प्रकट किया है। गुरु ऐसा होना चाहिए जिसने सुबोधिनी का गहरा अध्ययन किया हो। ऐसे महापुरुष को ही गुरु बनाना चाहिए और आदरपूर्वक उनकी सेवा करना चाहिए। (१०)

भगवान की शरणागति से ही जीव के जीवन की धन्यता होती है और प्रभु की शरणागति गुरु की शरण लेने के बाद सहज ही मिलती है। अत: ऊपर बताये गये गुणों से युक्त महापुरुष को गुरु बनाना चाहिए। उनका अनुग्रह प्राप्त करे, उनसे शरण-दीक्षा प्राप्त कर प्रभु की शरण ग्रहण कर प्रभु के निजजन बनें । (२४)

गुरु में श्रीहरि की भावना रखना चाहिए अर्थात् उन्हें भगवान-रूप मानकर उनकी सेवा करनी चाहिए, उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। उनका भय मन में रखे, कहीं जाने-अनजाने में हमसे उनके प्रति कोई अपराध न हो जाए। जब गुरु की कृपा होती है तभी श्री ठाकुरजी की शरणागति सिद्ध होती है, प्रभु का साक्षात्कार होता है। (४७) गुरु से मंत्रदीक्षा प्राप्त करें और अपना सब कुछ प्रभु को समर्पित कर दें। (५९)

छगनलालजी राठी एवं श्रीमती किशनदेवी राठी की पुण्य स्मृति में गोपालदास राठी एवं राठी परिवार (दिल्ली-बीकानेर-जयपुर) के सप्रेम जयश्रीकृष्ण। (आ. धर्मसेवा-१३)

गुरु के द्वारा दिये गये भगवत्स्वरूप की जीवनभर प्रेमपूर्वक सेवा करें। (९०, ९३) प्रभु जिसका वरण कर लेते हैं, उसे ही प्रभु मिलते हैं। (५७) जो भक्त वैष्णवोचित आचारों का पालन करते हुए भगवत्-सेवा परायण, समर्पित जीवन जीते हैं, वे कृतकृत्य हो जाते हैं और उन्हें श्री ठाकुरजी का साक्षात्कार होता है। (१२६, १२७)

गुरु का कर्तव्य है कि वह भवसागर से पार जाने की इच्छावाले शिष्य के लिए कर्णधार बनकर अपने उपदेश से कृतार्थ कर उसे भवसागर से पार उतारे। उसे भगवान् की शरणागति का उपदेश करे।

■

श्रीगोपीनाथप्रभुचरण को
श्रीविट्ठलेशप्रभुचरण द्वारा लिखित पत्र

श्रीनवनीतप्रिय-मथुरानाथ-द्वारकानाथ श्रीगोवर्द्धनधर, विट्ठलेश्वर, मदनमोहन, गोवर्द्धनधर, नवनीतप्रिय-चरणारविन्देषु अनुचरस्य प्रणतयो निवेदनीयाः।

स्वस्ति श्रीमज्ज्येष्ठभ्रातृचरणकमलेषु यवीयसो विट्ठलस्य प्रणामकोटि-निवेदकोऽयं पत्रदूतः। शम् इह, भावत्कम् आशासे। अहं भगवदाज्ञया रासोत्सवपर्यन्तं श्रीगोवर्द्धनचरणारविन्दनिकटे स्थितोऽस्मि। हरिद्वारं प्रति आज्ञा न जातेति न गतम्। अत्र मम अस्वास्थ्यं बहु जातम् आसीत्। उपवासदशकं कृतम्। अधुना भगवत्कृपया श्रीमत्कृपया च नैरुज्यं जातम् अस्ति। कापि चिन्ता न कार्या। अक्का-अम्मा-अत्ता- चरणेषु नतयः। अक्का यथा दुःख न करोति ममास्वास्थ्यं श्रुत्वा तादृक् कर्त्तव्यम्। भवतापि चिन्ता न कार्या मम। भगवति सर्वत्र। यादवेन्द्रपुरिषु ब्रह्मानन्देषु दीक्षितेषु हरिहर-नागनाथ-चूड़ादिषु- नमस्काराः। द, विष्णुदासादिषु आशिषः। अत्रत्य वैष्णवानां नतयः।

निर्भरं क्रीडतोरालि मुदा कुञ्जे विवाससोः।
अन्योन्यस्य प्रभैवासीद् अन्योन्यमुचितांशुकम्॥

गो.वा. नाथीबाई द्वारकादासजी टोकेरिया (छत्रपति नगर, इन्दौर)
की पुण्य स्मृति में परिवारजन के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

सेव्यस्वरूप और भगवत्सेवा

यशोदा मैया की गोद में खेलनेवाले नंदनंदन प्रभु श्रीकृष्ण ही वंदनीय हैं, वे ही सेव्य हैं। उन्हीं के चरणकमलों में श्रुति-स्मृति रूप रत्न शोभायमान हैं, मानो श्रुति (वेद) तथा शास्त्र उनके ही श्रीचरणों की आरती उतार रहे हों। (२) उन्हीं प्रभु कृष्ण का स्वरूप जो कि गुरु के द्वारा सेवा करने के लिए दिया गया हो अथवा स्वयं प्राप्त किया हो अथवा जिस स्वरूप की किसी भगवदीय ने सेवा की हो, उसकी सेवा करे। यदि उस स्वरूप का कोई अंग खंडित भी हो गया हो, किंतु उससे यदि तुम्हारे भाव में कोई बाधा न पहुँचती हो तो उसकी भी सेवा की जा सकती है। (९०)

सेव्यस्वरूप का तीर्थ के जल से (यमुना जल से) अपने पुष्टि संप्रदाय के निज मंत्र से संस्कार किया जाना चाहिए। सेव्य स्वरूप सुंदर हो, मनोहर हो। स्वरूप बहुत बड़ा न होकर गृहसेवा के योग्य छोटा होना चाहिए। सेवा सहजता से प्राप्त (यथालब्धोपचारक) वस्तुओं से करनी चाहिए। जो नौकरी-व्यवसाय का अन्य कारणों से विवश हों, पराधीन हों या जो विधिपूर्वक सेवा न कर सकें, जिन्हें भगवत् स्वरूप की सेवा करने की अनुकूलता न हो या जिन्हें सेवाविधि का समुचित ज्ञान न हो, उनका चित्र-सेवा करना ही उचित है। (८७) भगवत्-सेवा प्रेमपूर्वक होनी चाहिए। तन्मय होकर एकाग्र मन से और जीवनभर सेवा करनी चाहिए। ऐसी सेवा करने से ही भावना सिद्ध होती है, सेवा सफल होती है, प्रभु की कृपा प्राप्त होती है, जिससे जीवन में कृतकृत्यता होती है। (९३) भगवत्सेवा परिवारजनों के साथ तथा प्रेमपूर्वक करनी चाहिए। (१००, १०२)

पुष्टिमार्ग में सेव्यस्वरूप की प्राण-प्रतिष्ठा आदि का विधान नहीं है क्योंकि परब्रह्म श्रीकृष्ण तो सर्वत्र सबमें सर्वदा व्यापक हैं तथा वे जीवात्मा के समान प्राकृत नहीं हैं जिनमें कि प्राणाध्यास होने पर ही देह में प्रविष्ट होने की सामर्थ्य होती है। यहाँ तीर्थ के जल से स्नान या मंत्र से संस्कार का विधान भी इसलिए किया गया है कि

गो.वा. जमनादास द्वारकादासजी टोकेरिया (व्यंकटेश नगर, इन्दौर)
की स्मृति में परिवारजन के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

जिस धातु से, शिला आदि से सेव्यस्वरूप का निर्माण हुआ है उसकी शुद्धि के लिए तथा सेवा करने के लिए सद्गुरु की आज्ञा प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है। यदि किसी प्रसंग में सेव्यस्वरूप को अपवित्र का स्पर्श हो जाए तो पंचामृत स्नान, होम, दान और वैदिक विधि से शुद्धि की जा सकती है। (८८-८९)

■

श्री गोपीनाथजी प्रभुचरण को लिखे गये गुसांईजी श्री विट्ठलनाथजी के पत्र का हिन्दी अनुवाद

श्री नवनीतप्रिय, श्री मथुनानाथ, श्री द्वारकानाथ, श्री गोवर्धनधर, श्री मदन-मोहन, गोवर्द्धनधर, श्री नवनीतप्रिय के चरणारविन्दों में सेवक के प्रणाम निवेदन करें।

स्वस्ति, इस पत्र दूत के माध्यम से श्रीमत् ज्येष्ठ भ्राता (गोपीनाथजी) के चरणकमलों में लघु भ्राता विट्ठल के कोटिशः प्रणाम निवेदन है। यहाँ कुशल है, आपकी कुशलता की आशा करता हूँ।

मैं भगवत्-आज्ञा से रासोत्सव तक श्री गोवर्द्धनधर के चरणारविन्द के निकट रह रहा हूँ। हरिद्वार जाने की आज्ञा नहीं हुई, अतः वहाँ नहीं गया।

यहाँ मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया था। दस दिन तक उपवास किये। अब भगवान् की एवं आपकी कृपा से नीरोगता हो गई है। किसी प्रकार की चिन्ता न करें।

अक्का, अम्मा और अत्ता के चरणों में प्रणाम। मेरे अस्वास्थ्य के सम्बन्ध में सुनकर अक्का दुःख न करें, ऐसा आप कीजिए। आप भी मेरे संबंध में किसी प्रकार की चिन्ता न करें। भगवान सर्वत्र (रक्षक) हैं।

यादवेन्द्रपुरी, ब्रह्मानन्द दीक्षित, हरिहर, नागनाथ चूडा आदि को नमस्कार। विष्णुदासादि को आशीष। यहाँ के वैष्णवों का नमन।

श्लोक का अर्थ - हे सखि ! जब प्रभु निर्वस्त्र होकर कुंज में प्रियाजी के साथ एकान्त रसक्रीडा करते हैं तब एक-दूसरे की प्रभा ही एक-दूसरे के लिए उचित वस्त्राच्छादन बन जाते हैं।

गो.वा. मोहनलाल द्वारकादासजी टोकेरिया (रामचन्द्र नगर, इन्दौर)
की पुण्य स्मृति में परिवारजन के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

नित्य सेवा की विधि

भगवत्सेवा के पूर्व शुद्धि तथा तिलक धारण

प्रात:काल से मध्याह्न तक तथा फिर सायंकाल में उस काल में की गई प्रभु की लीला की भावना करते हुए, गुरु की सम्मति से उनके द्वारा दिये गये भगवत्स्वरूप की उनके द्वारा बताई गई विधि से सेवा करना चाहिए। (९१)

जीवनभर सेवा तन्मय होकर, एकचित्त से प्रेमपूर्वक करना चाहिए। तभी भक्तिभावना सिद्ध होती है जिससे कृतकृत्यता होती है, मानव- जीवन सफल हो जाता है। (९३) अपनी सामर्थ्य तथा देशकाल के अनुसार उत्तम वस्त्र, आभूषण, सुगंधित पदार्थ इत्र-चंदन-केशर- गुलाबजल, नैवेद्य (विविध प्रकार की भोग सामग्री) से प्रभु की सेवा करे। (९२)

वैष्णव प्रात: सूर्योदय के पूर्व, रात के अंतिम पहर में जाग जावे। उठकर शुद्ध होवे तथा भगवान की लीला का स्मरण करे। वाणी से प्रभु को गुणों का गान करे। (९४)

फिर प्रात:कृत्य (शौच जाना आदि) करे, मुख-शुद्धि करे तथा सुंगधित तेल से मालिश करे। फिर पहले मल-स्नान कुनकुने पानी से करे। उसके बाद उपलब्ध हो तो यमुना-जल से स्नान करे या स्नान-मंत्र बोलते हुए स्नान करे। (९५) फिर दो रेशमी वस्त्र धारण करे। पादुका पहन कर चले। स्नान के बाद किसी को स्पर्श न करे। (९७)

फिर बारह अंगों पर भगवान् के नाम का उच्चारण करते हुए कुंकुम के ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करे। फिर गोपीचंदन की मिट्टी से शंख-चक्र आदि मुद्राएँ अंकित करे। ऐसा करने से इंद्रियों की भगवत्सेवा के योग्य आध्यात्मिक शुद्धि होती है। आजकल वैष्णव बारह अंगों पर कुंकुम, तिलक तथा गोपीचंदन की मुद्रा धारण करना भूल गये हैं किंतु प्रत्येक वैष्णव को कम से कम ललाट तथा हृदय पर तो ऊर्ध्वपुण्ड्र, तिलक अवश्य धारण करना चाहिए। (९८) इसके बाद प्रभु के चरणामृत जल का

श्रीमती कलावती दामोदरदासजी डोसी (११ बंगला कॉलोनी, इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

पान तथा अंगों पर उसका लेपन करना चाहिए। इसके बाद तुलसीमाला लेकर संध्या, जप आदि करना चाहिए। (९९)

भगवत्सेवा–आरंभ करने के पूर्व आवश्यक कार्य

इसके बाद भगवान् के विराजने के स्थान (भगवान् के मंदिर) के द्वार पर जाकर स्तवनपूर्वक दंडवत् प्रणाम करे। फिर अंदर प्रवेश करके सेवा के पात्र माँजे, सुहावनी करे, लेपन, पोंछा आदि करे। वैष्णव को परिवारजन के साथ मिलकर सेवा करनी चाहिए। (१००, १०१)

प्रभु को जगाना

प्रभु को जगाने के पूर्व मंगल भोग सजा ले। झारी भर ले। फिर श्री ठाकुरजी को प्रेमपूर्वक जगावे। आचमन करावे। मुखवस्त्र करे। अलंकार धरावे। फिर प्रभु को सिंहासन पर पधरावे। (१०२)

मंगला

मंगल भोग में प्रभु को माखन, ठोर-मठरी आदि पक्वान्न, सुमधुर जल समर्पित करे। फिर यथासमय भोग सराकर बीड़ी समर्पित करे। वाद्यसहित मंगला के कीर्तन करे। उसके बाद मंगल आरती करे। (१०३)

स्नान, शृंगार

श्री ठाकुरजी को सुगंधित तेल, आँवला, चंदन, केशर आदि का उबटन मलकर स्नान करावे। यमुनाष्टक का पाठ करे। बाद में सूती वस्त्र से ठाकुरजी का श्रीअंग पोंछे। (१०४) फिर ऋतु-काल के अनुसार सुंदर रंगीन वस्त्र, विविध प्रकार के आभूषण, सुंदर मोरमुकुट, वंशी, छड़ी, सुंदर माला से प्रभु का शृंगार करे। उज्ज्वल चन्दोवा, शुभ्र बिछौना, पिछवाई, जलक्रीड़ा की वस्तुएँ, खिलौने आदि सजावे। इसके बाद गीत-वाद्य आदि के साथ शृंगार के कीर्तन करे। धूप, दीप आरती करे। यदि स्वजन उपस्थित हों तो उन्हें दर्शन करावे। (१०५-१०८)

श्रीमती पुष्पा मुरलीधरजी गाँधी (एच.आय.जी., इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

भोग-समर्पण

इसके बाद विविध प्रकार के चाटने योग्य (लेह्य), चूसने योग्य (चोष्य), पीने योग्य (पेय) खाने योग्य (खाद्य) स्वादिष्ट भोग सामग्री सुंदर पात्रों में सजाकर श्री ठाकुरजी के सम्मुख पधरावे। फिर यदि यज्ञोपवीत हो तो गायत्री मंत्र से (अन्यथा गुरु द्वारा प्रदत्त मंत्र से) तुलसी पधराकर प्रभु से निवेदन करे - 'प्रभो! मेरे द्वारा भक्तिभाव से समर्पित यह भोग स्वीकार कीजिए।' बाद में गो ग्रास देवे। फिर जो जप-पाठ आदि शेष रहे हों वे करे। (यदि यज्ञोपवीतधारी हो तो) मध्याह्न संध्या करे। (१०९-१११)

समय होने पर ठाकुरजी को आचमन कराकर बीड़ी (ताम्बूल) समर्पित करे। तदुपरांत पुष्पमाला-पुष्पगुच्छ समर्पित करे। तब भोग सराकर स्थान को शुद्ध करे। फिर श्री ठाकुरजी को आरोगने के लिए झारी पधरावे। (११२)

इसके बाद श्री ठाकुरजी को दर्पण दिखावे। राजाधिराज प्रभु को चँवर ढुलावे। प्रभु के सम्मुख गीत-वाद्य-नृत्य के साथ कीर्तन करे, मानो आज उत्सव ही हो। इसके बाद आरती करके प्रभु को दंडवत् करे। फिर प्रभु को हृदय में धारण करके भगवान् के मंदिर के द्वार बंद करके बाहर आ जावे। भगवान की प्रसादी माला, बीड़ी आदि माथे पर चढ़ाकर प्रभु के मंदिर के द्वार को प्रणाम करे। फिर घर में जाकर यदि दोपहर को किये जाने वाले जप-पाठ आदि शेष रहे हों तो करे तथा श्रीमद् भागवत का पाठ करें। (११३-११५)

महाप्रसाद ग्रहण करने के पूर्व कर्म एवं महाप्रसाद ग्रहण करने की विधि

महाप्रसाद ग्रहण करने के पूर्व पधारे हुए वैष्णवों को अपनी शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार महाप्रसाद दे। ब्राह्मणों को तथा दीनजनों को यथायोग्य महाप्रसाद और दक्षिणा या दान देवे। इसके बाद अपने परिवारजन, स्वजन के साथ महाप्रसाद लेवे। (११६)

सोनी छोटालाल हरकचंद परिवार (रेसकोर्स रोड, इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

दोपहर में क्या करे ?

महाप्रसाद लेने के बाद अपने परिवारजन से जो आवश्यक चर्चा करनी हो वह करे, लेकिन यह ध्यान रखें कि चर्चा इस प्रकार हो कि स्वयं के चित्त में या परिवारजन के चित्त में किसी प्रकार की आकुलता, उद्वेग न हो। (११७)

इसके बाद जीवन-यात्रा चलाने के लिए योग्य कार्य करे किंतु यह ध्यान रखे कि उन संसारिक कार्यों में अपना विशेष लगाव न रखे। कर्तव्य मानकर कर्म करे। यदि धन-संपन्न या साधन-संपन्न व्यक्ति न हो और आजीविका के लिए काफी समय देना पड़ता हो तो एक पहर (तीन घंटे) सेवा करके शेष समय आजीविका में लगावे। यदि संपन्न व्यक्ति हो तो अनवसर में शास्त्रों का अध्ययन, मनन, चिंतन करे। (११८)

यदि कोई भक्त अत्यंत नि:साधन हो या किसी की पारिवारिक परिस्थिति सर्वथा विपरीत हों इस कारण से वह भगवत्सेवा न कर पाता हो तो यदि वह व्यक्ति विद्वान हो तो भगवत् -सेवा न कर पाने की स्थिति में भागवतजी का पाठ ही कर लिया करे। यदि ऐसा भक्त विद्वान नहीं है, पढ़ा-लिखा भी नहीं है तो वह किसी भगवदीय द्वारा की जाती भगवत्सेवा में सहयोग प्रदान करे और जब वह भगवदीय भगवान् के गुणगान करे, भागवत-पाठ आदि करे तो तन्मय होकर उसका श्रवण करे। (११९)

उत्थापन सेवा

अपराह्न में आचमन करके बीड़ी आदि से मुख को शुद्ध करके उर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। सायं संध्या करे। इस प्रकार शुद्ध होकर श्री ठाकुरजी की उत्थापन समय की सेवा करे। उत्थापन भोग में कंद-मूल, फल, दूध-दही समर्पित करे। सुंदर पुष्पमाला धरावे। झारी भरे। मृदंग आदि वाद्य एवं संगीत-गायन से प्रभु को रिझावे। भगवदीयों (अष्टछाप के कवियों एवं अन्य के) पदों का गान करें। इन पदों में भवदीयों ने अपने हृदय के दिव्यभाव व्यक्त किये हैं, प्रभु की लीला का गान किया है तथा लीला के रहस्य प्रकट किये हैं। इसलिए इनके पदों का गान अवश्य करना

गिरधरदास रतनलाल जीवासेठ बाला (अंजनी नगर, इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

चाहिए। फिर गोचारण के बाद ब्रजमंडल में पधारते समय नंदालय के द्वार पर माता द्वारा की जाती आरती की भावना से संध्या आरती करे। (१२१, १२२)

शयनसेवा

सायंकाल अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रभु को शयनभोग (व्यालू) धरे। आरती करे तथा प्रभु को शयन करवाए। (१२३)

सोने के पूर्व के कृत्य

(आहिताग्नि हो तो) संध्या समय होम करे फिर प्रभु को निवेदित सामग्री को ही प्रसाद के रूप में ग्रहण करे। रात्रि में श्री ठाकुरजी की लीला की चर्चा करे अथवा भगवदीय के मुख से उनका श्रवण करे। (बाह्य रूप से तथा अन्तर्मन से) शुद्ध भक्त प्रभु के चरणारविन्द की भावना करते हुए शयन करे। यदि अपनी पत्नी संतान की कामना वाली हो तो उसके निकट जावे। इससे अपनी इंद्रियों का संयम होता है। श्री गोपीनाथजी की आज्ञा है कि ऐसी भागवत (वैष्णवोचित) दिनचर्या से ही मानव जीवन सार्थक होता है तथा जीव कृतकृत्य हो जाता है, श्री ठाकुरजी प्राप्त होते हैं। (१२६) यह दिनचर्या तथा वैष्णवोचिव आचार, हमारे भक्तिशास्त्रों में निरूपित हैं। इसी का अनुसरण वैष्णवों को करना चाहिए। अन्य प्रकार का आचरण या स्वेच्छाचरण न तो उचित है और न उससे इष्टफल अर्थात् प्रभु की कृपा और साक्षात्कार ही संभव है। (१२७)

■

प्रभु सदा हित ही करेंगे

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी की आज्ञा है कि वैष्णव किसी प्रकार की चिन्ता न करे। हमारे कुल के स्वामी श्री गोवर्द्धनाथजी हैं, वे हमारा सदैव हित ही करेंगे।

विज्ञप्ति-३

रमणीकलाल छोटालाल सोनी (रसकोर्स रोड, इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

स्त्रियों के संबंध में विशेष विचार

श्री गोपीनाथजी स्पष्टत: कहते हैं कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का हृदय कोमल होता है अत: प्रभु में उनका अनुराग, प्रेम शीघ्र ही हो जाता है। (८५) जैसे स्वर्ण में रज का दोष होता है, उसी प्रकार प्रकृति ने स्त्रियों में काम-दोष भी स्वाभाविक ही दे दिया है। किंतु प्रभु के प्रति प्रेम होने से काम-दोष पर सहज विजय प्राप्त हो जाती है और जब निर्गुण पुष्टि भक्ति, विशुद्ध भगवत्-प्रेम में स्त्री मग्न हो जाती है तो प्रभु स्वयं उनके वश में हो जाते हैं अर्थात् ऐसी विशुद्ध प्रेममयी भक्तिमती स्त्रियाँ प्रभु को भी जीत लेती हैं। भगवान् श्रीकृष्ण तो स्त्रियों को विशेष प्रिय होते ही हैं 'कृष्ण: स्त्रीणां प्रियो यत:'। (८३, ८४)

श्री गोपीनाथजी का मत है कि भक्त महिलाओं को साध्वी (साधु स्वभाव की) तथा मन और इंद्रियों पर संयम रखने वाली होना चाहिए। सधवा (सौभाग्यवती) स्त्रियों को पति भाव से प्रभु श्रीकृष्ण का आश्रय लेना चाहिए और यदि स्त्री विधवा है तो उसे पुत्रभाव से प्रभु श्रीकृष्ण का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। (७८)

समाज में, परिवार में स्त्रियाँ स्वतंत्र नहीं हैं- 'ह्यस्वतंत्रा: स्त्रियो यत: ' इसलिए वे प्राय: अपनी इच्छानुसार कार्य नहीं कर पाती हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें अपने पति, पति न होने पर पुत्र तथा परिवारजन की अनुकूलता से घर में सबके साथ मिलकर प्रभु श्रीकृष्ण की सेवा करनी चाहिए। यदि पति-पुत्र-परिवारजन अनुकूल न हों तो श्रवण-कीर्तन-स्मरण ही प्रेम से, भक्तिपूर्वक करना चाहिए। यदि परिवारजन भगवत्सेवा के पक्ष में न हों तो भी मंदिर में या गुरु-गृह में जाकर जितनी संभव हो उतनी सेवा या परचारगी स्त्रियाँ कर सकती हैं। (७९, ८०)

यदि स्वरूप-सेवा में प्रतिबंध हो तो गुरु की आज्ञा लेकर चित्र-सेवा भी की जा सकती है। कभी-कभी ऐसी भी स्थिति होती है जबकि परिवारजन के विरोध के होने पर भी या उनकी आज्ञा के बिना भी भगवत्सेवा करने पर प्रभु भक्त स्त्री का उद्धार

ब्रजमोहनजी नीमा एवं परिवार (जौहरी पैलेस, इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

करते ही हैं। जैसे द्वापर में परिवारजन के विरोध के बाद भी गोपियों ने प्रभु श्रीकृष्ण से गुप्त रूप से प्रेम किया था तो भी प्रभु ने उनका उद्धार किया। मन से प्रेम करने पर तो कोई प्रतिबंध नहीं लगा सकता है। (८२)

श्री गोपीनाथजी पुष्टिमार्गीय मर्यादा का ध्यान रखते हुए निर्देश देते हैं कि मासिक धर्मवाली और प्रसूता स्त्री तथा सूतक की अशुचि अवस्था में स्त्री-पुरुष कोई भी सेव्यस्वरूप के दर्शन-स्पर्श आदि न करें। (८५)

■

श्री गोपीनाथजी की बधाई

घर-घर आनन्द होत बधाई ॥
श्रीवल्लभगृह प्रगट भये हैं गोपीनाथ कुंवर सुखदाई ॥१॥

धन्य-धन्य आसो वद दिन द्वादसी धन्य-धन्य वार नक्षत्र कहाई ॥
धनि-धनि भाग्य खुले भक्तनके धन्य-धन्य कूंख अक्काजू माई ॥२॥

मङ्गल कलश बिराजत द्वारे बन्दनवार बंधाई ॥
कुंकुम अक्षत थार हाथ ले गावत वधूअन आई ॥

टीको करत निहारत श्रीमुख वारत आरती लोन करांई ॥
जुग-जुग राज करो यह ढोटा देत असीस सबें मन भाई ॥

जै जैकार भयो त्रिभुवनमें देव दुन्दुभि नाद बजाई ॥
श्रीवल्लभसुत चरनकमलरज कृष्णदास नोछावर पाई ॥५॥

श्रीमती सरोजबेन प्रकाशभाई शाह (जानकी नगर, इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

वर्णाश्रम धर्म और भक्तिमार्ग

श्री गोपीनाथजी ने 'साधन दीपिका' में जिन भागवत धर्मों का वर्णन किया है, वे भक्तिशास्त्र के अनुकूल, वेदसम्मत, स्मृतियों और पुराणों के अनुसार हैं। लेकिन प्राय: वैष्णवजन गोपीनाथजी के द्वारा गर्भाधान, यज्ञोपवीत आदि सोलह संस्कारों, संध्या, स्वाध्याय, पितृतर्पण, श्राद्ध, वैश्वदैव, स्मार्त अग्नि-धारण, गोग्रास, अतिथि-सत्कार, ब्राह्मण-गाय आदि को पूज्य मानना, दीनों के प्रति दया आदि कर्मों का उल्लेख तथा उनकी आवश्यकता का प्रतिपादन साधन दीपिका में करने के कारण चौंक जाते हैं और उन्हें मर्यादामार्गीय मानने लगते हैं किंतु वे यह भूल जाते हैं कि श्री गोपीनाथजी के लिए श्री महाप्रभुजी के वचन ही परम प्रमाण हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि देहधारी के लिए देह रहने तक कर्मों को पूरी तरह से त्यागना संभव नहीं है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को स्वधर्म अर्थात् वर्ण-आश्रम के अनुसार कर्म करना चाहिए। यदि वह अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार स्वधर्म का आचरण न करे तो दोहरा दोष होता है-एक तो स्वधर्म की उपेक्षा का और दूसरा स्वच्छंद आचरण का। इसलिए श्री महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि वैष्णव को अपने वर्ण-आश्रम के अनुसार अग्निहोत्र आदि कर्म यथाशक्ति करना चाहिए, अधर्म से दूर रहना चाहिए तथा इंद्रियरूपी घोड़ों को वश में रखना चाहिए। महाप्रभुजी ने अपने 'सर्वनिर्णय' ग्रंथ में यह निर्देश दिया है (२३८)। श्री गोपीनाथजी ने स्पष्ट कर दिया है कि भक्तिशास्त्र के अनुकूल स्वधर्माचरण और भागवतधर्म श्रीमदाचार्य-सम्मत हैं-

इति भागवतोधर्म: श्रीमदाचार्य-सम्मत: ।
भक्तिशास्त्रानुकूल्येन स्वधर्माचरणं भवेत् । (१७)

श्री गुसाँईजी विट्ठलनाथजी ने महाप्रभुजी को 'भक्त्याचारोपदेष्टा' कहा है। श्री गोपीनाथजी ने भी साधन दीपिका में श्री महाप्रभुजी-सम्मत भक्ति के आचार का

गो.वा. ललितादेवी गिरधरदासजी टोकेरिया एवं परिवार (सुखशीतल, इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

ही उपदेश दिया है। अत: जब वे स्वधर्माचरण अर्थात् अपने वर्ण, आश्रम और भक्तिशास्त्र के अनुसार धर्म का आचरण का आग्रह करते हैं, तो किसी प्रकार की भ्रांति नहीं होनी चाहिए। वे श्रीमहाप्रभुजी के उपदेश के अनुकूल ही यह आग्रह करते हैं।

महाप्रभुजी का निर्देश है कि त्रिवर्णवालों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को वेदोक्त सद्धर्म का ही आदरपूर्वक आचरण करना चाहिए क्योंकि वेदों के अतिरिक्त अन्य स्वतंत्र मार्ग फलसाधक नहीं होते। केवल वेदोक्त मार्ग, से ही जीव का कल्याण होता है। (२१० प्रकाश सर्व निर्णय) वेद-विरुद्ध पाखंड मतों को अस्वीकार करके उनका पूरी तरह से त्याग करके यथाशक्ति अग्निहोत्र आदि करते हुए अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए प्रभु श्रीकृष्ण की भक्ति में तत्पर रहना चाहिए- 'पाखण्डमत-स्वीकारम् अकृत्वा यथाशक्त्यग्निहोत्रादिकं कुर्वन् सदा कृष्णं भजन् भवति भगवदुक्तेनैव मार्गेण---' (सर्वनि. २१५ प्रकाश)। आप सावधान भी करते हैं कि सद्धर्मपरायण, कृष्णसेवा में तत्पर वैष्णव को वेद-निंदा और अधर्म (वेदविरोधी मत) से बचना चाहिए (वही २१६ सप्रकाश) श्री महाप्रभुजी का सुदृढ़ विश्वास है कि भक्तिमार्ग में श्रुति-स्मृति के विरुद्ध कोई भी आचरण स्वीकार नहीं है- 'न अत्र श्रुति-स्मृति विरुद्धाचार:' (वही २२५ प्रकाश)। श्री महाप्रभुजी का निर्देश भी है कि यदि वैष्णव अपने वर्णाश्रम धर्म का यथाशक्ति पालन करते हुए ब्रह्म का अनुभव करते हुए माहात्म्यज्ञानपूर्वक प्रेममयी भगवत्सेवा करे तो ऐसी भगवत्सेवा से उसे ब्रह्मभाव सिद्ध हो जाता है और उसकी भगवत्-सेवा फलरूपा अर्थात् आनंदरूपा हो जाती है। हाँ, यदि उस अवस्था के प्राप्त हो जाने पर आश्रमधर्म फलानुभव में प्रतिबन्धक मालूम पड़े तो ब्रह्मभावप्राप्त तादृशी वैष्णव परब्रह्म पूर्णपुरुषोत्तम के स्वरूपानंद, भजनानंद का अनुभव करने के लिए आश्रमधर्मों को छोड़ सकता है किंतु यह दिव्य अवस्था अत्यंत दुर्लभ है। ऐसे भक्त करोड़ों में से भी एक होना कठिन है। जब तक यह स्थिति प्राप्त न हो जाए तब तक आश्रमधर्मों का परिपालन करते रहना चाहिए। यह श्री महाप्रभुजी का सभी वैष्णवों को स्पष्ट निर्देश है- 'स्वाश्रमाचारसहित,

---

कृष्णदास विट्ठलदासजी साखी (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

ब्रह्मानुभवसहित, माहात्म्यज्ञानपूर्वक स्नेहो ब्रह्मभावं करोति । तादृशः चेत् परिचर्यासहितो भवेत् तदा सा परिचर्या आनंदरूपा सती त्रयोदशगुणा भवेत्। तदा फलरूपायां तस्यां स्वाश्रमाचारादिकरणं फलानुभव प्रतिबन्धकम् इति फलत्वेन अनुभवे स्वाश्रमाचाराः त्यक्तव्याः, यथा ब्रह्मभावं गतस्य। अन्यथा कर्तव्या इति निष्कर्षः । (वही १९६ प्रकाश)

श्री गोपीनाथजी को भी श्री महाप्रभुजी के समान ही विश्वास है कि वर्णाश्रम का पालन करते हुए प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण की सेवा करने पर ही शीघ्र आनंदरूप फल, भगवत्-लीला का अनुभव प्राप्त होता है-

स्वाह्निकधर्माणामाचारोऽपि प्रसज्यते । (१९)

दानंव्रतं पैतृकं च शौचं शान्तिमथाश्रयेत् ।
हरिमेव भजेत् प्रेम्णातेन सिध्यति सत्वरम् । (साधनदीपिका-७६)

तुलसी की माला और ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक के अलावा द्वादश अंगों में भगवन्नाम के साथ गोपीचंदन से शंख-चक्र आदि की मुद्रा धारण करने का उल्लेख गोपीनाथजी ने साधनदीपिका में किया है। (३८, ९८, ९९) इसे लेकर भी वैष्णवों में चर्चा होती है। इस संदर्भ में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि स्वयं श्री महाप्रभुजी ने 'सर्वनिर्णय' में द्वादश अंगों पर तिलक धारण करने और गोपीचंदन से पूजा के अंगभूत शंख-चक्र आदि के धारण करने का विधान दिया है किंतु पाषण्ड के लिए इन्हें धारण न किया जाए, यह भी निर्देश दिया है- 'मृदा शंखचक्रादिधारणं पूजांगत्वाद् अवश्य कर्तव्यम्, निषेधस्तु केवल, न पाषण्डत्वसंपादकः'---तिलकं च, दण्डाकार ललाटे स्यात् पद्माकारं च वक्षसि, वेणुपत्रनिभं बाह्वोरन्यद् दीपाकृतिर् भवेद्' इति। (सर्व नि. २४४ प्रकाश) ललाट पर दण्डाकार, हृदय पर पद्माकार, बाहुओं पर बाँस के पत्ते की आकृति के समान और अन्य अंगों पर तिलक दीप-ज्योति की आकृति वाले तिलक किये जाते हैं। (१) ललाट पर तिलक केशव के नामोच्चारण के साथ, (२) उदर पर नारायण नाम से, (३) वक्षस्थल पर माधव के नाम से, (४) कंठ पर

विट्ठलकिशोर मोहनलालजी खंडेलवाल (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

गोविन्द नाम के साथ, (५) दाहिनी कुक्षी पर विष्णु के नाम से, (६) दाहिने हाथ पर मधुसूदन के नाम के साथ, (७) कान के मूल में त्रिविक्रम के नाम के उच्चारणपूर्वक, (८) बायीं कुक्षी पर वामन के नाम के साथ, (९) बायें हाथ पर श्रीधर नाम से, (१०) पीठ पर पद्मनाभ नाम से, (११) कंधे पर दामोदर नाम से और (१२) मस्तक पर वासुदेव नाम के उच्चारणपूर्वक तिलक किया जाता है।

इस प्रकार बारह अंगों पर तिलक और गोपीचंदन से शंखचक्रादि धारण करने का विधान भी श्री महाप्रभुजी के अनुसार ही गोपीनाथजी ने किया है। आजकल वैष्णव केवल ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करते हैं किंतु अनेक पूज्यपाद आचार्य एवं पुष्टिमार्ग के अनेक तत्त्वज्ञ महानुभाव आज भी मुद्रा एवं द्वादश अंगों पर तिलक धारण करते हैं। सामान्य वैष्णव वर्तमान युग में यदि बारह अंगों पर तिलक धारण न कर पाये तो भी उसे ललाट एवं हृदय पर भगवान् के चरणचिह्न रूप अर्ध्वपुंड्र तिलक अवश्य धारण करना चाहिए।

वैष्णवों के लिए वर्णाश्रम धर्म का पालन एवं भक्तिमार्ग के आचारों का पालन भक्त्याचारोपद्वेष्टा श्री महाप्रभु के उपदेश के अनुरूप ही हैं और उसी का उपदेश गोपीनाथजी ने दिया है। यह सब पुष्टि भक्तिमार्ग की आचार संहिता का अनुरूप ही है। इस विषय में कोई भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए।

■

श्रीवल्लभसुत प्रथम प्रगटे,
लीलारसभाव गुप्त जै-जै श्रीगोपीनाथ भक्तन सुखदाई ॥
गावत हें वेद चार तोउ न आवे पार महिमाको कही न सके द्विजवंश राई ॥१॥
पुष्टिपथ करन काज प्रगटे हें भूमि आज गावत सब व्रजजन मिल मङ्गल बधाई ॥
[१]'हरिचन्द' (हरिदास बंस) जस गावे बहुत बधाई पावे
देखत त्रिलोक सब बल-बल जाइ ॥३॥

[१](यह पद मूलत: भारतेन्दु हरिश्चन्द का है। राग संग्रह-१२७)

दिलीपकुमार नंदलालजी नीमा (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

आदर्श वैष्णव जीवन

श्री गोपीनाथजी ने अपनी 'साधन दीपिका' में आदर्श पुष्टिमार्गीय वैष्णव जीवन का उपदेश दिया है। उसकी संक्षिप्त रूपरेखा निम्नानुसार हो सकती है- वैश्वानररूप श्री महाप्रभुजी पुष्टिभक्तिमार्ग के प्रचार-प्रसार के लिए ही धरती पर अवतरित हुए थे अत: पुष्टिमार्गीय वैष्णव को अपनी समस्त कामनाओं को पूर्ति करने वाले कल्पवृक्ष और कामधेनु के रूप में महाप्रभुजी श्री वल्लभाचार्यजी को ही मानना चाहिए (१) तथा उनके वचनों को, उनकी आज्ञा को ही सर्वोपरि प्रमाण या उत्कृष्ट आदेश मानना चाहिए (३,४)।

पुष्टिमार्गीय वैष्णव के परमवंदनीय, एकमात्र सेव्य यशोदा मैया की गोद में क्रीड़ा करने वाले प्रभु श्रीकृष्ण ही हैं। समस्त वेद-शास्त्र उन्हीं परम प्रभु के चरण कमलों को सुशोभित करने वाले रत्न ही हैं। जो भी जीव (अहंता-ममतात्मक) संसार से मुक्ति पाना चाहते हो उन्हें श्रीहरि की ही आराधना करनी चाहिए- 'हरेर् आराधने मुक्ति:। (७) प्रभु श्रीहरि की आराधना का अर्थ है प्रभु की भक्ति। प्रभु का माहात्म्य-ज्ञान हो तथा उन्हीं से सबसे अधिक एवं सुदृढ स्नेह हो, यही भक्ति है। इसके लिए वेद, भगवत्-गीता, भागवत आदि शास्त्र एवं महापुरुष सर्वप्रथम प्रभु के शरणागत होने का ही आदेश देते हैं। इसलिए हमें एकमात्र प्रभु श्रीकृष्ण की ही शरण में जाना चाहिए। उन्हीं का अनन्य आश्रय ग्रहण करना चाहिए। इसी से संसार से मुक्ति होती है, अन्य किसी उपाय से नहीं- 'तया मुक्तिर्न चान्यथा'। (८)

प्रभु का माहात्म्य ज्ञान कृष्ण-सेवापरायण, दंभादि से रहित सहज-सरल और भागवत के तत्त्व को जानने वाले गुरु से ही होता है। उनके उपदेश को प्रेमपूर्वक सुनने से भगवान् की प्रति शरण-भावना सिद्ध, परिपक्व होती है। (१०, १४) ऐसे गुरु की कृपा प्राप्त करके, उनसे दीक्षा ले। (२४) गुरु में श्रीहरि की भावना रखे, उनकी सेवा करे, उनकी आज्ञा का पालन करे, उनका भय मन में रखे। (४७)

यशवंतकुमार बंशीधरजी सोनी (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

गुरु से भगवत्-स्वरूप प्राप्त करके या स्वयं गुरु के पास कोई भगवत्-स्वरूप ले जाकर उनसे पुष्ट करवाकर उनकी आज्ञानुसार, उनके द्वारा बतायी गयी विधि से भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेमपूर्वक , सहजता से उलपब्ध साधन-सामग्री से परिवार के साथ मिलकर आजीवन नित्यसेवा करनी चाहिये। प्रभु श्रीकृष्ण की सेवा में सबकी सेवा हो जाती है, जैसे वृक्ष की जड़ में पानी सींचने से शाखा, पत्र आदि सभी का पोषण हो जाता है। (२१, ९०)

श्री गोपीनाथजी द्विज वैष्णव के लिए गर्भाधान आदि संस्कार देह की पवित्रता एवं भगवत-भाव की योग्यता के लिए आवश्यक मानते हैं किंतु अन्य वैष्णवों के लिए सदाचार को ही पर्याप्त मानते हैं। (१८,२३) आप इस बात का आग्रह रखते हैं कि प्रत्येक वैष्णव को वैष्णव आचार (नियम, मर्यादा) का तत्परता से पालन करना चाहिए। उसे प्रत्येक कार्य प्रभु के अधीन रहकर स्वयं को उनका दास मानकर (हरिसात्कार्य) प्रभु के लिए ही करना चाहिए। ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जो वैष्णव आचार या मर्यादा के विरुद्ध हो, अवैष्णव हो। उसे हिंसायुक्त या कामनावाले कार्यों का त्याग कर देना चाहिए। वैष्णवता के विरुद्ध यदि कोई लौकिक-सामाजिक कार्य हो तो वह भी न करे। (२५) यदि वंश या सामाजिक परम्परा से वैष्णव आचार-विचार के विरुद्ध आजीविका या कोई प्रणाली होती आई हो तो वह भी छोड़ देना चाहिए।

वैष्णव को ऊर्ध्वपुण्ड तिलक, गोपीचंदन की मुद्रा और तुलसी की माला धारण करना चाहिए। ये वैष्णव के बाहरी लक्षण हैं तथा मन में शांति और सांसारिक भोगों से विरक्ति होना वैष्णव के आंतरिक लक्षण हैं। यदि जीवन में शम (मन आदि आंतरिक इंद्रियों का संयम), दम (बाहरी इंद्रियों का संयम), तप (कष्ट सहन करना), शौच (शरीर और मन की पवित्रता), धैर्य और क्षमाशीलता (क्षति), सरलता, दया, तत्त्वज्ञान का चिंतन, श्रद्धा आदि दैवी गुण जीवन में आ जावें तो भक्ति

सौ. मनोरमा श्यामसुंदर पारख (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

दृढनिष्ठा वाली (नैष्ठिकी) हो जाती है। (३९) नैष्ठिकी भक्ति से 'सर्वात्मभाव', जो कि उत्कृष्ट सिद्धि है, प्राप्त होता है। (४०)

वैराग्य की भावना कैसे सिद्ध होती है, इसकी प्रक्रिया भी श्री गोपीनाथजी ने बतायी है। सभी सांसारिक वस्तुओं में दोष-दृष्टि की विशेष भावना रखे, इंद्रियों का संयम करे और जो प्रभु-कृपा से प्राप्त होता है, उसी में संतोष रखे तो वैराग्य निश्चित रूप से सिद्ध होता है। (४१) जब सांसारिक वस्तु, व्यक्तियों और संबंधों में सर्वत्र वैराग्य हो जाता है तो नंदनंदन श्रीकृष्ण में स्वतः राग (प्रेम) होता है। वही प्रेम प्रभु के प्रति आसक्ति का रूप ले लेता है। धीरे-धीरे व्यसन की अवस्था सिद्ध हो जाती है और प्रपंच (संसार) की स्फूर्ति या स्मृति होती ही नहीं है। भक्त का मन पूरी तरह से केवल प्रभु में निरुद्ध हो जाता है। जिसका मन प्रभु में निरुद्ध हो जाता है अर्थात् पूरी तरह से कृष्णमय ही बन जाता है, समझो कि उस पर प्रभु का अनुग्रह हो गया है। वह प्रभु की लीला में प्रवेश करता है, उसे प्रभु की लीला का साक्षात् आनंद मिलने लगता है। उसके लिए एकमात्र आश्रय, शरण प्रभु हो जाते हैं। जैसे कि प्रभु ने शरणागत ब्रजभक्तों के लिए कहा था- 'गोकुल का आश्रय तो मैं ही हूँ और प्रभु ने गोवर्धन उठाकर गोकुलवासियों की रक्षा की थी। (१४) उसी प्रकार ऐसे शरणागत भक्त के शरण-स्थल (आश्रय) प्रभु ही हो जाते हैं।

प्रभु ऐसे भक्तों के योग-क्षेत्र की जिम्मेदारी अपने पर ले लेते हैं। ऐसे तादृशी तदीय वैष्णव भगवदीय एक क्षण के लिए भी भगवद-भजन के बिना नहीं रहते। क्षणभर के लिए भी वे प्रभु को विस्मृत नहीं करते क्योंकि वे जानते हैं कि जिस क्षण में प्रभु की स्मृति नहीं होगी उसी क्षण आसुरावेश हो सकता है। संसार के प्रति आसक्ति जाग सकती है। (४६)

ऐसे तादृशी वैष्णव का जीवन भगवत्परायण एवं पवित्र होता है। वह कभी कोई पाप कर्म नहीं करता। यदि अज्ञानवश कोई निषिद्ध/ निन्दित आचरण हो भी

डॉ. कृष्णकांत मधुबाला खजांची (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

जाता है तो वह शीघ्र ही उससे बाहर निकल जाता है। अज्ञानवश पतित होने की स्थिति में भी वह प्रभु श्रीहरि को ही श्रेष्ठ उपाय के रूप में स्वीकार करता है क्योंकि भक्त के लिए अपराध की स्थिति में भी प्रभु के अतिरिक्त अपराध /दोष/ पाप से मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। प्रभु परम दयालु हैं। यदि पतन की स्थिति में भी भक्त उससे उबरने या शुद्ध होने के लिए प्रभु पर ही, उनकी दया पर ही विश्वास रखे तो ऐसे भक्त पर दया करके प्रभु प्रसन्न ही होते हैं। (४५) और उसे समस्त दोषों से मुक्त कर देते हैं।

भक्तों के हृदय में साक्षात् भगवान प्रसन्नता से विराजते हैं इसलिए तादृशी वैष्णव भगवान् के भक्तों को नमन करता है, उन्हें देखकर प्रसन्न होता है। उन्हें आदरपूर्वक घर में बुलाता है, उनका सत्कार एवं पूजन करता है। (४८)

जो तादृशी वैष्णव भक्त परमात्मा को अपनी आत्मा मानता है, उस पर प्रभु अनुग्रह करते हैं फिर उसकी लोक में या वेद में बुद्धि नहीं टिकती, वह लोक या वेद में होने वाली मति को त्याग देता है। (५४) इतना ही नहीं वह अन्य जीवों को भी अनुग्रह मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है। ऐसा लोक संग्रह (परोपकार) वेद-सम्मत है तभी तो महापुरुषों ने लोककल्याण के कार्य किये हैं और जीवों को प्रभु कृपा के दिव्य मार्ग की ओर प्रेरित किया है। वास्तव में जो प्रभु को प्रिय हैं ऐसे महानुभाव ही महापुरुष मानें जाते हैं। (५५) उनके ही जीवन एवं उपदेशों का अनुकरण करना चाहिए। उसे आदर्श मानना चाहिए।

इसलिए श्री गोपीनाथजी की आज्ञा है कि पुष्टि जीव को भागवत धर्मों की अच्छी तरह से शिक्षा लेनी चाहिए। भगवान् श्री नारायण की भक्ति में तत्पर होकर भक्तिमार्ग के द्वारा ही प्रभु की सेवा में तत्पर होना चाहिए। इसी से वह कठिनता से पार की जाने वाली दुरुत्तर माया को पार कर लेता है और कलियुग के समस्त दोषों को भी पार करके परमपद को, प्रभु रूप परम फल को पा लेता है। (६०, ६१)

तादृशी वैष्णव कभी अन्यदेव के पास नहीं जाता, कभी अन्याश्रय

गो.वा. कुंभनसादजी झालानी की स्मृति में ब्रजकिशोर रामकिशोर एवं झालानी परिवार, (इन्दौर) के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

नहीं करता। किन्तु उनके सम्मुख होने पर कभी उनका अपमान नहीं करता, वह तीर्थों में तीर्थदेवता तथा ब्राह्मणों- पुरोहितों आदि का भी पूजन करता है। (६८)

श्री गोपीनाथजी यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि कलिकाल में संन्यास और अग्निहोत्र शास्त्रीय विधि से संभव नहीं है। यदि अल्प बुद्धि वाले संदिग्ध-धर्मसेवा के रूप में इन धर्मों का आचरण करने का प्रयास करते हैं तो यथाविधि कर्म संपन्न न कर पाने के कारण ये क्लेश के कारण ही बनते हैं। यदि वैष्णव सामर्थ्य वाला हो, शास्त्रों का ज्ञाता, विद्वान हो तो वह स्मार्तअग्नि धारण कर सकता है। (६९, ७०)

श्री गोपीनाथजी जानते हैं कि कलिकाल में अन्य आश्रय धर्मों का पालन करना संभव नहीं रहा केवल गृहस्थाश्रम से ही थोड़ी-बहुत यत्किंचित् सिद्धि संभव है, अत: आप गृहस्थ आश्रम के समर्थक हैं क्योंकि गृहस्थाश्रम के बिना देहयात्रा के धर्मों का निर्वाह भी संभव नहीं है। आपका आग्रह है कि परिवार के साथ प्रेमपूर्वक कृष्ण-सेवा आजीवन करनी चाहिए तथा यथाधिकार वर्ण-आश्रम-धर्मों का परिपालन, दान, व्रत, श्राद्ध-तर्पण आदि पितृकार्य भी करते रहना चाहिए। (७२, ७६, १००)

■

आचार्यश्री का त्रितयात्मक स्वरूप अभिध्येय है

लीलाबिहारी भगवान् श्रीकृष्ण में रहनेवाला गूढ (गुप्त) स्त्रीभावात्मक सौन्दर्य और श्रीस्वामिनीजी में रहने वाला गूढ पुरुष भावात्मक सौन्दर्य जब कभी अत्यधिक रसोद्बोधन की अवस्था में उमड़कर प्रकट होता है तो उन दोनों स्वरूपों के मेल से प्रकट हुए रसात्मक श्रीकृष्ण की लीला के प्रियपात्र श्रीमद् वल्लभाचार्य इन तीनों के साक्षी बनते हैं। वे त्रितयात्मक श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभु ही पुष्टिजीवों के अतिशय प्रिय (वल्लभ) हैं और वे ही सर्वोत्कृष्ट रूप से ध्यान करने योग्य हैं। (सौन्दर्य पद्य)

जगमोहन राठी, (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्री गोपीनाथजी एवं श्री गुसाँईजी

श्री गोपीनाथजी एवं श्री विट्ठलनाथजी दोनों भाइयों में बहुत स्नेह था। श्री विट्ठलनाथजी अपने बड़े भाई गोपीनाथजी के प्रति बहुत आदरभाव रखते थे। आपने अपने पत्र में ज्येष्ठ भ्राता श्री गोपीनाथजी को 'कोटिशः प्रणाम' निवेदन किये हैं तथा अस्वास्थ्य के उपरांत पुनः स्वास्थ्य-लाभ का श्रेय भगवत्कृपा के साथ ही अपने बड़े भाई श्री गोपीनाथजी की कृपा को भी दिया है- **'अधुना भगवत्कृपया श्रीमत्कृपया च नैरुज्यं जातं अस्ति, कापि चिन्ता न कार्या।'** आप अपने ज्येष्ठ भ्राता से किसी प्रकार की अपने स्वास्थ्य-संबंधी चिन्ता न करने का भी आग्रह करते हैं। इतना ही नहीं माताजी को भी अपने अस्वास्थ्य-संबंधी समाचारों से चिन्ता न हो इसकी जिम्मेदारी भी ज्येष्ठ भ्राता पर ही छोड़ते हैं। आप पत्र में पुनः पुनः आग्रह करते हैं कि आप स्वयं भी मेरे स्वास्थ्य-संबंधी कोई चिन्ता न करें - **'भवतापि कापि चिन्ता न कार्या।'** कैसा दिव्य प्रेम है दोनों बंधुओं में। कितनी अगाध श्रद्धा है गुसाँईजी की अपने ज्येष्ठ बंधु के प्रति !!

आचार्य गोपीनाथजी जब प्रवास पर होते थे तो कई स्थानों पर वैष्णव श्री विट्ठलनाथजी के लिए भी उन्हें भेंट राशि समर्पित करते थे। आप वह राशि श्री गुसाँईजी को भिजवा दिया करते थे। आगरा के वैष्णवों ने एक बार सौ मोहरें श्री गुसाँईजी की भेंट के रूप में आपको समर्पित कीं। आपने वे मोहरें वासुदेवदास छकड़ा के द्वारा एक पत्र के साथ गुसाँईजी को भिजवा दीं। गुसाँईजी ने भी मोहरों की प्राप्ति की सूचना पत्र द्वारा वासुदेवदास के माध्यम से ही आपश्री को भिजवा दी। यह प्रसंग दोनों बंधुओं की आत्मीयता और परस्पर विश्वास व्यक्त करता है।

जब श्री गोपीनाथजी का लीला में प्रवेश हो गया और उनके एकमात्र पुत्र पुरुषोत्तमजी भी भूलोक पर नहीं रहे तो श्री गोपीनाथजी की लक्ष्मी बेटीजी और सत्यभामा बेटीजी दोनों जीवनभर गुसाँईजी की ही देखरेख में परिवार में परिवार की सदस्य के रूप में ही रहीं। वैष्णव भी इन दोनों बेटीजी के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे।

गोविन्ददासजी मोहनलालजी ठाकुर एवं परिवार, (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्री गुसाँईजी ने अपने ज्येष्ठ भ्रान्ता की वंदना करते हुए निम्नलिखित श्लोक रचा था, जिसे आज अधिकतर वैष्णव गुसाँईजी की स्तुति के रूप में बोलते हैं-

यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत् ।
तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्वल्लभनन्दनम् ।।

(जिनके अनुग्रह से जीव सभी दुःखों को पार कर जाता है उन श्री वल्लभनन्दन गोपीनाथजी को मैं सर्वदा वन्दन करता हूँ।)

यह श्लोक इस तथ्य का परिचायक है कि गुसाँईजी श्री विट्ठलनाथजी की अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्रति कितनी श्रद्धा थी? उनके अलौकिक दिव्य सामर्थ्य में उनका कैसा सुदृढ़ विश्वास था ? धन्य है बड़े भाई के प्रति यह श्रद्धा और विश्वास ...।

कृष्ण-बलराम की जोड़ी

पुष्टिमार्ग में गोपीनाथजी को बलदेवजी का रूप माना जाता है। इस मान्यता को लेकर गोपीनाथजी को मर्यादा रूप या मर्यादा पुरुष कहा जाने लगा। गोपालदासजी ने श्री वल्लभाख्यान में आपको बलदेवजी की उपमा दी है तथा श्रीगुसांईजी को नन्दानन्द कहा है। वहाँ उनका बल इस बात पर प्रतीत होता है कि श्रीमहाप्रभुजी का घर नन्दालय है, जहाँ बलराम और कृष्ण की जोड़ी क्रीड़ा करती है। परिवारजनों एवं स्वजनों को भी गोपीनाथजी और विट्ठलनाथजी बलदेव और कृष्ण के समान लगते रहे होंगे। दोनों भाइयों में कृष्ण-बलदेव के समान घनिष्ठ एवं अगाध स्नेह था। सूरदासजी ने अनेक पदों में 'हरि-हलधर की जोड़ी' का उल्लेख किया है। श्रीगोपीनाथजी एवं श्रीगुसाँईजी की जोड़ी भी ऐसी ही थी।

इस सन्दर्भ में श्री महाप्रभुजी के गुजरात प्रवास का एक प्रसंग स्मरण रखना चाहिए। आपश्री ने त्रगड़ी गाँव में एक ब्राह्मण के चबूतरे पर विश्राम किया। प्रातः ब्राह्मण की पत्नी दही मथकर, मक्खन को मथानी में ही छोड़कर अपनी पुत्री के साथ पानी भरने के लिए गई। बाद में ब्राह्मण के दोनों पुत्र जाग गये और वे जाकर आनन्द

मधुरमोहन द्वारकादासजी साखी, (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

से मथानी में से मक्खन निकाल कर खाने लगे। ब्राह्मण को यह दृश्य देखने पर अपने दोनों पुत्र कृष्ण-बलराम के रूप लगे। वह बाहर जाकर महाप्रभुजी से कहने लगा- 'महाराज ! पधारिये। आपको ठाकुरजी की लीला दिखाता हूँ।' महाप्रभुजी ने बच्चों की बाललीला देखी। तब आपश्री ने ब्राह्मण को कहा- 'इन बच्चों में आपको कृष्ण-बलराम का भाव उपजा यह आनन्द की बात है। अपनी पत्नी से कहना वह भी इनसे इसी रूप में प्रेमपूर्वक व्यवहार करें। 'बाद में आपश्री ने अपने साथ वाले सेवकों को कहा- 'सम्पूर्ण गुजरात में केवल इस ब्राह्मण को ही भगवत्लीला की स्फूर्ति हुई है।'

ऐसे ही भाव-विभोर भक्तों को श्री गोपीनाथजी और श्रीगुसांईजी में बलदेव और कृष्ण का भाव जागा होगा। किन्तु बाद में श्रीगोपीनाथजी को मर्यादा का प्रतीक ही मान लिया गया। श्रीगोपीनाथजी के द्वारा दीक्षित वैष्णवों को भी मर्यादामार्गीय बताया गया और तो और उन्हें जो ठाकुरजी का स्वरूप पधराया गया उसे भी मर्यादा स्वरूप कहा जाने लगा। जब बंगालियों को श्रीनाथजी की सेवा से हटाया गया तो झगड़ा मिटाने के लिए बंगाली श्रीगोपीनाथजी के सेव्य श्रीमदनमोहनजी को लेकर ही माने। इससे संकेत मिलता है कि उनकी दृष्टि में मदनमोहनजी के स्वरूप के प्रति श्रीनाथजी के समकक्ष ही आदर रहा होगा। श्रीगोपीनाथजी के सेव्य स्वरूप का वैष्णवों के हृदयों में क्या स्थान रहा होगा यह प्रतीत होता है। किन्तु इसे भी इस रूप में प्रस्तुत किया गया कि बलदेवजी मर्यादारूप हैं और श्रीगोपीनाथजी बलदेवजी के रूप हैं इसलिए वे भी मर्यादारूप हैं और उनके सेव्य स्वरूप भी मर्यादा रूप हैं। इसलिए उनके सेव्य स्वरूप को मर्यादा-पद्धति से पूजा करने वाले बंगालियों को श्रीगुसाँईजी ने दे दिया। इस प्रकार झगड़ा मिटा दिया।

जब जगदीश में गोपीनाथजी प्रभु श्री जगदीश के स्वरूप में लीन हो गये तो पं. गदाधरदास द्विवेदी ने 'सम्प्रदायप्रदीप' में लिखा - 'ज्येष्ठपुत्रो गोपीनाथः पुरुषोत्तममासाद्य स्वरूपमवाप' - 'श्रीमहाप्रभुजी के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथजी

महेन्द्र भगवानदासजी नीमा, (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

जगन्नाथधाम जाकर भगवद् विग्रह में लीन हो गये' किन्तु भाषा साहित्य में कहा गया कि गोपीनाथजी जगदीशपुरी में श्री बलदेवजी के स्वरूप में लीन हो गये।

मुझे तब बहुत आश्चर्य हुआ जब कि श्री गोपीनाथजी के सम्बन्ध में पुस्तक लिखते समय एक वैष्णव ने दूरभाष पर मुझे कहा कि गोपीनाथजी को तो पुष्टिमार्ग से निकाल दिया गया है न! फिर आप गोपीनाथजी पर ग्रंथ क्यों लिख रहे हैं?

इस प्रकार गोपीनाथजी के बलदेव रूप को लेकर अनेक प्रकार की भ्रान्त धारणाएँ वैष्णवों में व्याप्त हैं। एक दिव्य भाव के रूप में हरि-हलधर की जोड़ी का स्वरूप भगवदीयों में मन में प्रकट हुआ था, उसकी परिणति ऐसी होगी इसकी कल्पना भी दुःखद है।

श्रीमद्भागवत में तो बलरामजी के द्वारा की गयी लीलाओं को प्रभु श्रीकृष्ण के द्वारा की गयी लीला ही माना गया है। श्रीमहाप्रभुजी ने इसका कारण समझाते हुए कहा- 'कृष्णो च सन्नतात्मानस्कार्यं भगवत्कृतम्'। जो भी भगवान् में ही नतात्मा है, पूरी तरह से कृष्ण में ही आसक्त हैं, वे जो भी करते हैं, वह भगवान् के द्वारा किया गया ही माना जाता है। बलरामजी में श्रीकृष्ण का स्वरूप प्रवेश कर चुका था इसलिए बलरामजी के द्वारा की गयी लीलाएँ वस्तुतः श्रीकृष्ण-स्वरूपाविष्ट रूप की ही लीलाएँ हैं। इनके मुख्यकर्ता प्रभु श्रीकृष्ण ही हैं। धेनुकासुर, प्रलंबासुर, द्विविद आदि का वध बलरामजी ने किया था, किन्तु ये लीलाएँ प्रभु श्रीकृष्ण की ही कही जाती हैं। प्रभु श्रीकृष्ण और बलरामजी के अभेद के कारण ही श्री महाप्रभुजी ने पुरुषोत्तमसहस्रनाम में 'श्रीकृष्ण के नामों में 'बलभद्राहितगुण' अर्थात् बलरामजी में आनन्द प्रदान करने वाले गुणों को स्थापित करने वाले यह नाम दिया है। बलरामजी में कृष्णावेश है। उन्हें किसी भी रूप में हीन नहीं मानना चाहिए। गोपीनाथजी में लीला रस का भाव गुप्त है, किन्तु उनका प्राकट्य पुष्टिभक्तों को सुख देने के लिए ही हुआ है, वे पुष्टिपथ प्रशस्त करने के लिए ही भूतल पर प्रकट हुए हैं - 'लीलारस गुप्त जै जै श्रीगोपीनाथ भक्तन सुखदाई, पुष्टिपथ करन काज प्रकटे हैं भूमि आज गावत व्रजजन मिल मंगलमय बधाई॥

सुनील नारायणदासजी नीमा, (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्रीगोपीनाथजी एवं श्रीगुसांईजी में एक-सा आदर भाव वैष्णवों के मन में होना चाहिए। जैसा कि गोपियों ने वेणुगीत में 'वक्त्रं व्रजेशसुतयोः' (व्रजेश के पुत्र दो हैं किन्तु उनका मुख एक है अतः यहाँ एक वचन वक्त्रं का प्रयोग हुआ है) में गोपियों ने बलरामजी एवं प्रभु श्रीकृष्ण को एक रूप में ही, कृष्णरूप में ही देखा है। हमें भी दोनों आचार्यों के प्रति यही अभेद बुद्धि एवं श्रद्धाभाव रखना चाहिए।

■

श्रीगोपीनाथप्रभुचरणों की जगन्नाथपुरी की यात्रा का अति प्राचीन ताड़पत्र में उड़िया भाषा में उपलब्ध वर्णन का हिन्दी अनुवाद

परम भागवत परम वैष्णव श्री श्री श्री वल्लभाचार्यकुलोद्भव श्रीमद्गोपीनाथाचार्य गोस्वामी, श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रे गजपति महाराजाके सामने धर्मव्याख्यान देते हुवे (शिरोपा) शिरस्त्राण लेकर सम्मानित हो रहे हैं।

पुरुषोत्तममें अकाल पड़ा। धान न हुई, पानी न मिले, बहुत अनर्थ होने लगे। मनुष्य का मांस मनुष्य खाने लगे। कोई किसी की न मानता। जो पहले कभी नहीं हुआ था ऐसा रोग बडि (हैजा की तरह एक रोग) फैल गया। उस समय वडसन्थ मठ में गुरु रामदास गुरु थे। बीडानसी के महाश्रम रामदासजी को कहा आप गुरु हैं। आपके रहते समय क्या बदलेगा नहीं! इसी समय श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य गोपीनाथ आचार्य आये। वह परम भाग्यशाली पुरुष थे। प्रतिदिन शरीर पर कस्तूरी का लेप लगाते थे। परम सुन्दर आचार्य गोपीनाथजी आये हैं, यह जानकर राजा बहुत सन्तुष्ट हुए। फलाहारी मठ में निवास का प्रबन्ध किया। भूमिदान किया। अकाल के बारे में कहा। सबने कहा वह उद्धार कर लेंगे। गोपीनाथजी के कहते ही बरसात होने लगी। जन-मानव सन्तुष्ट हुए। हैजा गया। राजा परम सन्तोष से उन्हें जुलूस के साथ पुरुषोत्तम मन्दिर (जगन्नाथजी का मन्दिर) ले गये। उनसे वेदान्त सुना। इस धर्मग्रन्थ को श्रवण कर सब मुग्ध हुए। राजा को सन्तोष हुआ। अकाल गया। सुकाल आया। ऐसे दस दिन रहने के बाद वे बाहुला मठ गये। वहाँ योगमार्ग प्रदर्शन किया। सन्त-महन्त आये। राजा ने कहा आप गुरु हैं। उन्होने कहा हम वैष्णव हैं। हम क्षत्रिय को शिष्य कैसे बनायें। राजा ने कहा कुछ भूमि ग्रहण कर यहाँ मठ स्थापित करें। उन्होने जवाब दिया "हम कहीं और जायेंगे। हमें वित्त से क्या प्रयोजन है। हमें गोकुलचन्द्र ने सब कुछ दिया है। हम यहाँ भूमि लेकर क्या करेंगे। इसे ब्राह्मणको दे दीजिये" ऐसा कहा। राजा ने उन्हें वस्त्रशाठी (एक तरहका वस्त्र) देकर जुलूस निकलवाया और नगर का भ्रमण कराया। फिर वे उत्तरको चले गये।

राजीव व्रजमोहनजी नीमा, (इन्दौर)

के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्री गोपीनाथजी का विशिष्ट प्रदेय

गोपीनाथजी महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के वचनों को ही परम प्रमाण के रूप में स्वीकार करते थे। अत: अपने साधनदीपिका ग्रंथ में आपने श्री महाप्रभुजी की साधना-प्रणाली को ही वरेण्य मानकर उसी का विवेचन किया है। आपने आज्ञा की है कि यशादोत्संगलालित नन्दनन्दन ही वंदनीय हैं। वैष्णवों को उन्हीं की सेवा करनी चाहिए। प्रभु श्रीकृष्ण की सेवा से सभी का पूजन हो जाता है। जैसे मूल का ही अभिसिंचन किया जाना चाहिए। (२०,२१) वैसे ही मूल पुरुष प्रभु श्रीकृष्ण की ही सेवा करनी चाहिए।

श्री महाप्रभुजी के अनुरूप ही श्री गोपीनाथजी का भी सुनिश्चित मत है कि प्रभु के माहात्म्यज्ञानपूर्वक उनमें सबसे अधिक एवं सुदृढ़ स्नेह ही भक्ति है और ऐसी भक्ति से ही मुक्ति मिलती है। (७, ८) जब सांसारिक वस्तुओं में दोष-दृष्टि रखने से वैराग्य हो जाता है तो नन्दनन्दन श्रीकृष्ण में राग (प्रेम) होता है, वही राग या प्रेम आसक्ति और व्यसन का रूप धारण कर लेता है फिर प्रपञ्च की विस्मृति रूप निरोध सिद्ध हो जाता है। जिस जीव पर प्रभु की ऐसी कृपा हो जाती है, उसके आश्रय (शरणस्थल) स्वयं प्रभु बन जाते हैं। ऐसे जीवों के लिए तो प्रभु की लीला का आनंद अनुभव करना ही इष्ट होता है। फिर वह जीव क्षणभर भी भगवद्-भजन के बिना नहीं रह पाता। (४१-४३, ४६)

प्रभु जिस पर कृपा करते हैं वह जीव लोक और वेद में निष्ठा छोड़कर प्रभु में निष्ठा करने लगता है। (५४) भगवान् जिस जीव का वरण कर लेते हैं, उसे ही मिलते हैं। जीव प्रभु के वियोग के ताप को स्मरण कर, अनुभव कर, अपना सब कुछ प्रभु को समर्पित कर उनके नाम, मंत्र का आश्रय लेकर भगवत्-परायण होकर माया को तथा कलियुग के दोषों को पार कर जाता है। (५७-६१)

श्री गोपीनाथजी ने शौच (पवित्रता) तथा वैष्णवोचित आचरण पर बहुत

महेश नीमा 'गामा' (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

बल दिया है। उन्होंने आज्ञा की है कि जो शौच और आचार से रहित है उसके जीवन में देह और इंद्रियों में आसुरावेश की पूरी संभावना रहती है- 'शौचाचार-विहीनस्य आसुरावेश-सम्भवात्।' (१९) इसलिए आपने शौचाचार पर सूक्ष्म विचार किया है और उसका विवेचन करते हुए वैष्णवों के लिए उसके परिपालन की आज्ञा की है। आपका कथन है कि प्रत्येक द्विज (त्रिवर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को गर्भाधान, यज्ञोपवीत धारण आदि संस्कारों से अपनी देह को अवश्य शुद्ध बना लेना चाहिए। संस्कारों से विशुद्ध देह में ही भगवद्भाव की योग्यता सिद्ध होती है ,अन्यथा नहीं। (१८) 'साधन दीपिका' को पुष्टिभक्ति का आचार शास्त्र भी कहा जा सकता है। गोपीनाथजी ने ग्रंथ के उपसंहार में कहा है- 'इस प्रकार भक्तिशास्त्र में जो आचार कहा गया है उसी का यहाँ निरूपण किया गया है। उसका पुष्टिमार्गीय भक्त को अनुसरण करना चाहिए। इससे भिन्न अन्य प्रकार का आचरण उसे इष्ट नहीं है और न इसके अलावा उसकी अन्य कोई गति है। (१२७)

आपने स्नान, संध्या, जप, होम, स्वाध्याय, तर्पण, वैश्वदेव आदि वर्णाश्रम धर्म रूप वैदिक कर्मों की महत्ता बताई है। (२०) किंतु यह भी स्पष्ट कर दिया है कि ये नित्य कर्म अपने आप में लक्ष्य नहीं है। कर्मों से पूज्य तो पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही हैं अत: उनकी सेवा के अंगरूप से ही अन्य सभी कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए। यदि उन्हें छोड़कर कर्मों का ही आश्रय लें तो कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। ऐसे कर्म तो बंधनकारक बन जाते हैं क्योंकि उस स्थिति में वे त्रिवर्ग (धर्म-अर्थ-काम) के साधकमात्र सिद्ध होते हैं। (२२) आपश्री ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि श्राद्ध आदि पितृधर्म तथा विश्वदेव आदि कर्म भगवान के महाप्रसाद से ही करने चाहिए। इससे पितृगण तथा देवता अत्यंत उत्तम प्रकार से संतुष्ट होते हैं। इससे अन्न का तथा आत्मा का संस्कार भी होता है। (३३, ३४)

श्री गोपीनाथजी वैष्णव आचार के अतंर्गत वैष्णवों के बाह्यचिह्न ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, गोपीचंदन से मुद्रा, तुलसी काष्ठ की माला आदि भी आवश्यक बताये

मोहनलालजी गोकुलदासजी नीमा ('बड़ोदा बैंक',इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

हैं। साथ ही शांति और विरक्ति को वैष्णव के आंतरिक लक्षण बताते हुए उनकी महत्ता भी बताई है। (३८) इतना ही नहीं आपका स्पष्ट मत है कि शम (आन्तर इन्द्रियों का संयम), दम (ब्राह्य इन्द्रियों का संयम), तप (प्रभु के लिए कष्ट सहन करना), शौच (पवित्रता), क्षान्ति (धैर्य, क्षमा), आर्जव (सरलता), दया, दान, विज्ञान (तत्त्वज्ञान), श्रद्धा आदि दैवी गुणों से भक्ति नैष्ठिकी (पूर्ण निष्ठावाली, सुदृढ) बनती है। जब भक्ति नैष्ठिकी होती है तभी सर्वात्मभाव रूपी परा सिद्धि प्राप्त होती है। आपने निर्देश दिया है कि वैष्णव की आजीविका चित्त को व्याकुल करने वाली और पापमयी न हो, हिंसामय न हो, यदि वैष्णवता को विरोधी दिनचर्या या आजीविका हो तो वह भी छोड़ दे। (११७, २५)। आजाविका प्रभु-सेवा तथा जीवन-निर्वाह के लिए ही करें, उसमें विशेष लगाव न रखें।

आपने भगवत्सेवा के लिए देह-शुद्धि तथा जब-जब आवश्यक हो कर-शुद्धि (हाथों को शुद्ध करना) को आवश्यक माना है। आप वैष्णवों को निर्देश देते हैं कि सेवा के समय वस्त्र शुद्ध पहनें, अपने पात्र (बरतन) और भगवत्सेवा में प्रयुक्त होने वाले पात्र अलग-अलग रखें, उन्हें परस्पर न मिलावें। अपने आचार तथा प्रभु की पाकसेवा (भोग सामग्री) गुप्त रखें। प्रभुजी की रसोई में हर किसी को प्रवेश न करने दें। (२६, ६२, ६७) भगवत्सेवा के कार्य जैसे पात्र माँजना, पोंछा करना, भोग तैयार करना आदि स्वयं करें।

आपने अन्याश्रय के त्याग का स्पष्ट निर्देश दिया है किंतु अन्य देवों का अपमान न करने की आज्ञा दी है। तीर्थयात्रा के समय तीर्थ देवता एवं विप्रों के पूजन को भी उचित माना है। (६८)

भगवत्सेवा अपने घर में परिवार के साथ करें। इस पर आपने विशेष बल दिया है। वर्तमान युग में गृहस्थ धर्म निभाते हुए परिवारजन के साथ जीवनपर्यंत प्रेमपूर्वक तथा पूरी तरह से मन लगाकर भगत्वसेवा करनी चाहिए। इसी से

गोपालजी घासीदासजी नीमा, धरमपुरी वाले, (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

भगवद्भाव सिद्ध होता है और जीवन में कृतकृत्यता होती है, जीवन सफल और धन्य हो जाता है।

प्रेम्णा परिचरेत् साधुः यावज्जीवं समाहितः ।
तेनास्य भावना सिद्धिः तथा स्यात् कृतकृत्यता ॥ (९३)
परिचर्या हरे : कार्या परिवार जनै : सह । (१००)

गोपीनाथजी ने स्त्रियों के लिए विशेष रूप से आज्ञा की है कि पति, पुत्र एवं परिवारजन यदि अनुकूल हों तो अपने घर में श्री ठाकुजी को पधराकर सेवा करनी चाहिए। यदि परिवार में अनुकूलता न हो तो कलह एवं विरोध के वातावरण में आनन्दरूप प्रभु को न पधराकर प्रेमपूर्वक भक्तिभाव से प्रभु का स्मरण, श्रवण, कीर्तन करना ही उचित है। (७९) गृहस्थी के लिए आपने विप्र, गाय, भक्तजन और अतिथि को पूजनीय बताया है तथा दीनजनों के प्रति सदा दया करने का निर्देश दिया है। (३५)

श्री गोपीनाथजी स्वरूप सेवा को प्राथमिकता देते हैं किंतु जिन्हें सेवाविधि का समुचित ज्ञान न हो, जो नौकरी आदि के कारण से पराधीन हो, जिसके परिवार में स्वरूप-सेवा की अनुकूलता न हो, वह चित्र सेवा करें, -'चित्रमूर्तिरविज्ञानां पराधीनात्मनामपि'। (८६)

गोपीनाथजी ने स्त्रियों के लिए एक विशेष विधान किया है। आप आज्ञा करते हैं कि सौभाग्यवती (सधवा) स्त्री को प्रभु का आश्रय पतिभाव से लेना चाहिए और जो स्त्री विधवा हो उसे पुत्रभाव से प्रभु श्रीकृष्ण का सम्यक् आश्रय लेना चाहिए। इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण भी है। (७८)

प्रायः यह माना जाता है कि राग-भोग-शृंगारपरक सेवा पर श्री गुसाँईजी ने ही विशेष बल दिया था किंतु 'साधनदीपिका' के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन तीनों पर श्री गोपीनाथजी ने भी विशेष बल दिया था। साधनदीपिका में सेवाविधि के अंतर्गत इन तीनों का पद-पद पर उल्लेख हुआ है। उदाहरणार्थ-

चन्द्रप्रकाश मोहनलालजी जवेरी, (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

गायेत् तस्य गुणान् गिरा (९४) (वाणी से प्रभु का गुणगान करें।) नीराजनं कार्यं मंगलं गीतवाद्यकैः (१०४) (वाद्यों के साथ मंगला के मंगलमय कीर्तन करें) 'तौर्यत्रिकेन तत्रापि धूपदीपादिनार्तिकम्' शृंगारोपरान्त (नृत्य-गीत-वाद्य सहित आरती करें।) गीताद्युत्सवतो ह्येन नीराज्य (११३) (वाद्य, गीत आदि से कीर्तन करें और राजभोग आरती करें।) उत्थापन सेवा में भी मृदंग आदि वाद्यों के साथ भगवदीयों द्वारा रचित श्रीहरि की लीला के रहस्य के भावों से युक्त पदों के गान का विधान किया गया है- 'सन्तोष्य मुरजादीनां संगीतेनापि तोषयेत्। गायेद् भक्तकृतैः पद्यैः हृद्यैर्लीलारहस्यकैः।' (१२१, १२२)

गोपीनाथजी अत्यन्त दृढ़ता से विश्वासपूर्वक कहते हैं- विना नृत्येन गानेन हरिप्रीतिः कथं भवेत्' (५०) बिना नृत्य-गान के, प्रभु से प्रेम कैसे हो सकता है?

इसी प्रकार श्लोक ९२, १०५ से १०८ तक प्रेमपूर्वक प्रभु के विविध प्रकार से अलंकार धराने का विधान किया गया है- 'अलंकृत्येव सप्रेम।'

'स्वीयान् भक्तान् प्रदर्शयेत्। (१०८) मंगलभोग, राजभोग, उत्थापन भोग, संध्या भोग, शयन भोग आदि का विधान भी साधन दीपिका (९२, १०३, १०९, १२१, १२३) में किया गया है। अतः राग-भोग-शृंगारपरक सेवा के उपदेष्टा गोपीनाथजी थे, इसमें कोई संदेह नहीं है। अपने श्री ठाकुरजी के दर्शन भी केवल आत्मीय स्वजनों को ही कराने का विधान आपने किया है।

पुष्टिमार्ग कृपा का मार्ग है। भगवान् जिसका वरण करते हैं, जिस पर कृपा करते हैं, वही लोक-वेद में निष्ठा को छोड़कर प्रभु का अनन्य आश्रय लेकर इस मार्ग पर आगे बढ़ सकता है। वही कृतकृत्य होता है। श्री महाप्रभुजी की आज्ञा है कि जिस पर हरिकृपा नहीं होती है, उसके लिए पुष्टिमार्ग सब कुछ असंभव है। (सर्व नि. २२६ प्रकाश) इस तथ्य पर श्री गोपीनाथजी ने बहुत बल दिया है। (५७, ५४)

पुष्टिमार्ग में गुरु-कृपा और भगवदीयों की कृपा का भी विशेष महत्व है।

जयकृष्णजी नीमा, (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्री गोपीनाथजी ने यह भी आज्ञा की है कि गुरु-कृपा और भगवदीयों की कृपा के बिना भक्ति नहीं हो सकती है। 'विना भक्तप्रसंगेन सद्गुरोः कृपया बिना---भक्तिः कथं भवेत्।' (४९)

पुष्टिमार्ग प्रेमपंथ है। श्री महाप्रभुजी की आज्ञा है कि प्रेम ही सेव्य को वश में करने का मुख्य साधन है-प्रेम्णा सेवा तु सर्वत्र सेव्यवश्यत्व साधनम्' (३२३) प्रेम ही भगवान् की प्राप्ति का साधन है-'प्रेम च साधनम्' (२२० सर्वनि.)। श्री गोपीनाथजी ने साधनदीपिका में सर्वत्र प्रेम की महत्ता प्रकट की है। आप की आज्ञा है कि सत्पुरुष को जीवनभर प्रेमपूर्वक प्रभु की सेवा करना चाहिए। इसी से भावनासिद्धि होती है और उससे जीवन में कृतकृत्यता आती है।' (९२) वे सेवा की प्रत्येक विधि में 'प्रेम' का उल्लेख करते हैं जैसे-हरिं को प्रेमपूर्वक जगावे-'प्रबोध्य श्रीहरिं' प्रेम्णा' (१०२) प्रभु को प्रेमपूर्वक शृंगार धरावे-'अलंकृत्येव सप्रेम' (१०८) प्रेमपूर्वक राजभोग धराकर प्रार्थना करे- 'एतत् समर्पितं देव भक्त्या मे प्रतिगृह्यताम्' (११०)

श्री महाप्रभुजी ने सर्वशास्त्रार्थनिर्धारक और प्रभु के सर्वसामर्थ्य के ज्ञापक श्रीमद् भागवत को प्रभु-प्रेम का उत्पादक माना है-'श्रीभागवतमेव सर्वज्ञाशास्त्रार्थ-निर्धारकं सर्वमहात्म्यज्ञापकं प्रेमोत्पादकं भवति' (सर्वनि. प्रकाश ३२६)। गोपीनाथजी श्रीमद् भागवत के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे। उन्होने तो पहले यह नियम ही बना लिया था कि सम्पूर्ण भागवत का पारायण करने के बाद ही आप भोजन करते थे। गोपीनाथजी ने साधनदीपिका में भक्तिशास्त्ररूप भागवत को आधार ग्रंथ बनाया है। अनेक बार आपने भागवत के श्लोकों को प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है। आपने एकादश स्कन्ध में वर्णित योगीश्वरोक्त भक्तिमार्ग के अनुसार भगवत्-भजन को कलि के दोषों को पार कर उत्तम पद प्राप्ति का साधन माना है। (६१) आप श्री महाप्रभुजी के समान ही मानते थे कि गुरु उसे ही बनाना चाहिए जो महापुरुष भागवत का तत्त्वज्ञ हो। (१०) आपने साधनदीपिका में नित्यसेवाविधि के अंतर्गत राजभोग आरती के उपरांत महाप्रसाद ग्रहण करने के पूर्व श्रीमद्भागवत का पठन करना

कुमारसंभव कुंभज, (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

आवश्यक माना है। (११४) यदि कोई वैष्णव परिस्थितिवश भगवत्सेवा न कर सकता हो और यदि वह विद्वान् हो तो उसे श्रीमद्भागवत का पाठ तो अवश्य करना ही चाहिए। यदि वह वैष्णव विद्वान न हो तो उसे किसी भगवद्भक्त के द्वारा किये जाते भागवत-पाठ का श्रवण करना चाहिए। (११९) इस प्रकार विशेष परिस्थिति में आपने भागवत के पाठ अथवा उसके श्रवण को भगवत्-सेवा के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया है। इससे ज्ञात होता है कि वे श्रीमद्भागवत के पाठ को वे भगवत्सेवा के समान मानते थे।

श्री गोपीनाथजी का मत है कि जिन वैष्णवों ने लोक-वेद में परिनिष्ठित बुद्धि त्याग कर अपना मन भगवद्भक्ति में स्थिर कर लिया है, उन्होंने लोक-वेद में आसक्त अन्य दैवी जीवों को भी भगवद्-अनुग्रह के मार्ग की ओर प्रेरित करना चाहिये, उन्हें भगवद्-भक्ति में लगाना चाहिए। इस विषय में प्रभु के प्रिय महापुरुषों के जीवन को प्रमाण मानना चाहिए। वेदव्यासजी, नारदजी, श्री महाप्रभुजी आदि ने दैवी जीवों को भगवद्-भक्ति में लगाया था-'अनुग्रहे नियोज्य:----महतां समयो मानम्। (५५)

इस विवेचन से ज्ञात हो जाता है कि आचार्य श्री गोपीनाथजी प्रभुचरण का पुष्टिमार्ग में अप्रतिम योगदान है। आश्चर्य की बात है कि उनका नाम आचार्यों की परंपरा में से ही हटा देने का प्रयत्न हुआ है। जैसा कि निम्नलिखित प्रसिद्ध एवं प्रचलित श्लोक से स्पष्ट है-'श्रीमद्वल्लभविट्ठलौ गिरिधरं गोविन्दरायाभिधं---च तद्वंशजान् ----स्मरेत्।' इस श्लोक में श्री महाप्रभुजी, श्री गुसाँईजी, उनके सातों लालजी का स्मरण किया गया है किंतु श्री गोपीनाथजी को इस क्रम में सम्मिलित नहीं किया गया है। सभी वल्लभवंशीय गोस्वामी बालकों को वल्लभ रूप मानने वाले महानुभावों द्वारा श्री गोपीनाथजी के साथ ऐसा भेदभाव किया जाना आश्चर्यजनक है।

■

दिनेश कुमार, अध्यक्ष विशा नागर समाज, (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्री गोपीनाथजी विभिन्न महानुभावों की दृष्टि में

आचार्यों की दृष्टि में गोपीनाथजी

श्री गुसाँईजी ने श्रीमद्वल्लभनंदन गोपीनाथजी को वंदन करते हुए आपके दिव्य सामर्थ्य का वर्णन किया है। जो जीव सांसारिक दु:खों के सागर में डूबे हुए हैं वे श्री वल्लभनंदन गोपीनाथजी के अनुग्रह से समस्त दु:खों को पारकर लेते हैं, उनसे मुक्त हो जाते हैं। ऐसे श्री गोपीनाथजी को मैं सदा वंदन करता हूँ-

यदनुग्रहतो जन्तु: सर्वदु:खातिगो भवेत् ।
तमहं सर्वदा वंदे श्रीमद्वल्लभनन्दनम् ।।

गो. श्याममनोहरजी का मत है कि 'आधुनिक पुष्टिजीवों को श्री गोपीनाथजी एवं श्री गुसाँईजी विट्ठलनाथजी दोनों बंधुओं में अभेदभाव रखकर दोनों का स्मरण इस श्लोक से करना चाहिए।'

श्रीमद् अणुभाष्य के 'प्रकाश' के मंगलाचरण के पाँचवें श्लोक में गोस्वामी श्री पुरुषोत्तमजी गोपीनाथजी को श्रीवल्लभ-प्रतिनिधि, तेजोराशि, दया के सागर, प्राकृत गुणों से अतीत, अलौकिक गुणों के भंडार के रूप में श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए उनका आश्रय लेने की भावना व्यक्त करते हैं-

श्रीवल्लभप्रतिनिधिं तेजोराशीं दयार्णवम् ।
गुणातीतं गुणनिधिं श्रीगोपीनाथमाश्रये ।।

गोस्वामी श्री व्रजराजजी (सुरत) ने 'संवत्सरोत्सवकल्पलता' में यह स्पष्ट किया है कि श्रीमद् वल्लभाचार्य महाप्रभुजी ने अपने आत्मज के रूप में श्री गोपीनाथजी को वास्तव में अपने प्रतिनिधि के रूप में ही प्रकट किया था। आपको प्रकट करने का उद्देश्य यह था कि उनके माध्यम से महाप्रभुजी के निज भक्त महाप्रभुजी के स्वरूप को जान सकें, जिससे उन्हें आनंद प्राप्त हो। अत: पुष्टिमार्गीय वैष्णवों को गोपीनाथजी का प्राकट्य उत्सव अवश्य मनाना चाहिए। उत्सव के समय सेवा संपन्न करने के बाद

श्रीमती नीना दिनेशजी नागर, (ईगल इंटरप्राइजेस, इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

तिलक करें और गोपीनाथजी को प्रणाम करते हुए प्रार्थना करें- 'श्री वल्लभात्मज ! श्रीवल्लभ प्रतिनिधि, करुणानिधि गोपीनाथजी हम आपको प्रणाम करते हैं। आप कृपा कर हमें श्री महाप्रभुजी की भक्ति प्रदान कर हमारी रक्षा करें -

श्रीवल्लभप्रतिनिधे ! गोपीनाथ ! तदङ्ग्ज !
पाहि तद्भक्तिदानेन नमस्ते करुणानिधे !

आपने यह आज्ञा की है कि जिसे श्रीमद् आचार्यचरण की भक्ति की कामना है, उसे आचार्य चरण की प्रसन्नता के लिए प्रतिवर्ष श्री गोपीनाथजी का उत्सव मनाना चाहिए। इससे श्रीमद् वल्लभाचार्यचरण प्रसन्न होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। वे अपने स्वरूप से भक्त के हृदय में सदा विराजेंगे।

गो. श्री द्वारकेशजी (भावनावाले) श्री गोपीनाथजी को बलरामजी का स्वरूप मानते हैं और आपके प्राकट्य पर आचार्यचरण की प्रसन्नता का भी वर्णन करते हैं-

गायौं श्री गोपीनाथजी, जब जन्म लीनों आयकें
जानि बल को रूप हरषे, देत दान बधायकें।

गोस्वामी श्री हरिरायजी ने भी अपने बधाई के पदों में श्री गोपीनाथजी को संकर्षण (बलरामजी) रूप माना है। आपको अति उदार, करुणामय, अक्षुण्ण उग्र प्रतापवान् निरूपित कर विनम्र भाव से उनकी शरण में आने का उल्लेख किया है-

प्रगटे श्री गोपीनाथजी प्रथम सुत संकर्षण वपु भाई।
अति उदार करुणामय अक्षण उग्र प्रताप सहाई।
ऐसे जानि शरण आयो यह 'रसिकदास' सिर नाई॥

गो. श्री व्रजरत्नलालजी महाराजश्री (सूरत) के मतानुसार श्रीगोपीनाथजी के आचार्य पद की पूरी जानकारी श्री यदुनाथजी दिग्विजय से प्राप्त होती है। श्रीगोपीनाथजी ने पुष्टिमार्ग का सुन्दर संचालन किया था। श्री गोपीनाथजी का प्रभाव श्री महाप्रभुजी के समान था। (साधनदीपिका - सम्पादक भगवत्प्रसाद पंड्या)

गो.वा. नटवरलालजी नागर (इन्दौर)
की पुण्य स्मृति में नागर परिवार के जयश्रीकृष्ण

ल्लभात्मज !
रते हैं। आप

क की कामना
ी का उत्सव
ई संदेह नहीं

ी का स्वरूप
र्न करते हैं-

नाथजी को
अक्षुण्ण उग्र
र किया है-

नाथजी के
होती है ।
गथजी का
ाद पंड्या)

गो. श्री व्रजेशकुमारजी (कांकरोली-वडोदरा) का मत है कि 'पुष्टिमार्ग के सम्पूर्ण दायित्व का निर्वहन एवं पुष्टि सम्प्रदाय की प्रारंभिक धुरा का वहन जिस प्रकार श्री गोपीनाथजी ने किया उसके गौरव को विगत शताब्दियों में अनेक लोग विस्मृत कर बैठे हैं । पुष्टिमार्ग के आचार्य के स्वरूप में जिस प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण श्रीमहाप्रभुजी ने पुष्टिमार्ग के पथिक भक्तों और मर्यादा मार्ग के पथिक भक्तों को अपने-अपने अधिकार के योग्य आत्मकल्याण का मार्ग बतलाया, उसी प्रकार गोपीनाथजी ने उसी विधा से अपने जीवन के पाँच दशक पुष्टिमार्ग की नींव को सुदृढ करने के लिए समर्पित किये। श्रीगोपीनाथजी को अनेक लोग केवल मर्यादास्वरूप मानते हैं, लेकिन पूर्णावतार वही होता है जो मर्यादा में पुष्टि के कार्य और पुष्टि में मर्यादा के कार्य करे जैसा कि श्री गोपीनाथजी और श्री गुसाँईजी ने कर दिखाया है। जो उदाहरण भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण ने प्रस्तुत किया था उसी का संकेत इन दोनों महापुरुषों के जीवन में भगवदीयजन अनुभव कर सकते हैं। (डॉ. पीयूष परीख के ग्रंथ 'आपणाज श्रीगोपीनाथजी' ग्रंथ में)

गोस्वामी श्याममनोहरजी का मत है कि प्राचीन भाषा साहित्य में कहीं-कहीं श्री गोपीनाथजी के मर्यादामार्गीय होने का उल्लेख मिलता है किंतु श्री महाप्रभुजी तो 'अंगीकृतौ समर्याद' हैं। इसलिए इस मर्यादा को पुष्टि बाह्य मर्यादा न जानकर पुष्टिमार्ग के अंतर्भूत मर्यादा जाननी चाहिए। ---श्री गोपीनाथजी-विरचित -सेवा 'सेवा श्लोक' तथा 'साधन दीपिका' ग्रंथों में पुष्टि भक्ति का निरूपण मिलता है, मर्यादा भक्ति का नहीं। इसलिए अन्यथाभाव नहीं लाना चाहिए।''

गोस्वामी शरदजी (मांडवी) ने अपने ग्रंथ 'श्रीगोपीनाथप्रभुचरण' के प्रकाशकीय में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है-''श्री गोपीनाथजी प्रभुचरण के विषय में सम्प्रदाय के लोगों में जितनी जानकारी होनी चाहिए, उतनी नहीं देखी जाती। इतना ही नहीं, विशेषकर भाषा साहित्य मात्र से परिचय रखने वाले पुष्टिमार्गी और सामान्यतया अन्य पुष्टिमार्गी भी, श्री गोपीनाथप्रभुचरण का निर्गुण-पुष्टिभक्ति-

---

गो.वा. नवनीतलाल पन्नालालजी नीमा की पुण्य स्मृति में नीमा परिवार (इन्दौर) के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

संप्रदाय में असाधारण महत्त्व होने पर भी उनके प्रति उपेक्षाभाव रखते देखे जाते हैं। सम्प्रदाय के लिए यह दुर्भाग्य का विषय है। अतएव इस सम्बन्ध में कुछ करना चाहिए।

---साम्प्रदायिक इतिहास देखा जाए तो श्री गोवर्धननाथजी की सेवा-व्यवस्था में अपने एकाधिकार को चिरस्थायी बनाने के उद्देश्य से श्री गोपीनाथप्रभुचरण की अनुपस्थिति में उनके पुत्र श्री पुरुषोत्तमजी को गुसाँईजी के विरुद्ध भड़काकर कृष्णदास अधिकारी ने जो पारिवारिक वैमनस्य खड़ा किया था, उसका दुष्परिणाम अद्यावधि श्री गोपीनाथप्रभुचरण को भुगतना पड़ रहा है। इस तथ्य से सम्प्रदाय के इतिहासविद् अज्ञात नहीं हैं। उक्त दुर्घटना के पश्चात् कुछ अपवादों को छोड़कर सम्प्रदाय के प्राय: सभी आचार्य, ग्रंथकार, इतिहासकार, धौल-पद-कीर्तनकार तथ्य की सर्वथा अवहेलना करते हुए एक लय में श्री गोपीनाथप्रभुचरण के प्रति उपेक्षात्मक व्यवहार करते आ रहे हैं।--- 'करे कोई और भरे कोई' यह युक्ति श्री गोपीनाथ प्रभुचरणों पर लागू होती है।''

वैष्णवों के श्री गोपीनाथजी के प्रति भाव–

बलदेव श्री गोपीनाथ कहीअे, श्री विट्ठल नंदानंद।
ते वेद पंथ विस्तारशे, जन आपशे आनंद। (२-२४)
गोपीनाथजी सोहामणा, नव जल घन तनु भाण रे रसना।
सुखदाता लघु भ्राता ना , पूरण पुरुष प्रमाण रे रसना। (९-३)

वल्लभाख्यान

गोपालदासजी को गोपीनाथजी एवं विट्ठलनाथजी की जोड़ी बलदेव और कृष्ण की जोड़ी प्रतीत होती है। वे गोपीनाथजी के मेघ के समान श्यामसुंदर स्वरूप एवं छोटे भाई श्री विट्ठलनाथजी के प्रति उनके प्रेम की महिमा का गान करते हैं। आप गोपीनाथजी के प्राकट्य का उद्देश्य श्रुति-सम्मत-भक्तिपंथ का विस्तार करना मानते हैं तथा उन्हें पूर्णपुरुष मानकर वंदना करते हैं।

गो.वा. डॉ. नारायणदासजी नीमा एवं गो.वा. कुसुमलता नीमा
की पुण्य स्मृति में नीमा परिवार (इन्दौर) के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजी के प्रिय, विद्वान् शिष्य गोधरा निवासी राणा व्यास ने भागवत सुबोधिनी की प्रतिलिपि श्री गोपीनाथजी के लिए करते हुए आपश्री का स्मरण अत्यंत श्रद्धापूर्वक आपश्री को 'महाराज', 'भगवान्', 'भगवत्तम', जैसे दिव्य शब्दों से किया है तथा स्वयं को आपकी शरण का इच्छुक बताया है-

गोपीनाथमहाराजो भगवान् भगवत्तम:
तदाश्रयेऽस्मद् हृद्दृष्टया तत्प्रसादात् तदात्मना

तदीयानां तदर्थार्थं तदेकशरणार्थिना
व्यास वल्लभशिष्येन व्यासराणेन लेखिता ।।

गो. शरदजी ने ठीक ही लिखा है- 'राणा व्यास के श्री गोपीनाथ प्रभुचरण के प्रति रहे परम स्नेह और आदरपूर्ण भावों को जानकर सहज में ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस काल में श्री महाप्रभुजी के अन्य शिष्यों में भी श्री गोपीनाथजी प्रभुचरण की आदरपूर्ण प्रतिष्ठा थी।' (श्री गोपीनाथ प्रभुचरण : प्रकाशकीय पृ.३-४)

कवि जगतानंद ने 'श्रीवल्लभ वंशावली' में श्री गोपीनाथजी का स्मरण करते हुए उन्हें खिले हुए कमल के समान मुख वाले अर्थात सदा प्रसन्न-प्रफुल्ल मुखकमल वाले कहा है- 'जन्म श्री गोपीनाथजी प्रफुलित वदन सरोज'।

गुजराती भाषा में उपलब्ध धोल में भी श्री गोपीनाथजी का स्मरण बलदेव, कल्पवृक्ष, दैवीजीव हितकारी, चरणकमल की रज से महापतितों को पावन करने वाले कहा गया है तथा श्री गोपीनाथजी और श्री गुसाँईजी विट्ठलनाथजी की जोड़ी को 'हरि-हलधर की जोड़ी' बताया गया है। यह भी कहा गया है कि जिनका सिर इन दोनों भ्राताओं के लिए नहीं झुकता है, वे कूडजन हैं-

बलदेव श्री गोपीनाथजी ने जाणो रे

प.भ. गो.वा. गोपालदास मणिहार की पुण्य स्मृति में मणिहार परिवार (इन्दौर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

सुत गोपीनाथजी श्री विट्ठल जाया
जाणिये कल्पवृक्षनी छाया ।
प्रगट्या दैवी जीव हितकारी,
मुख छबि ऊपर जाउ बलिहारी ।

श्रीमद् विट्ठलनाथजी श्री गोपीनाथ सोहाय
चरणकमलनी रज थकी, महापतित पावन थाय रे ।
हं रि वालो हरि-हलधरजीनी जोड जो ।
हं रि वालो श्रीवल्लभराय गृह अवतर्या
हं रि वालो श्री गोपीनाथजी का भ्रात जो ।

भले प्रगट्या श्रीवल्लभराय अे घणुं जीवो रे
अेहुना सुत छे बे अतिशे रूडा रे ।।
जेनुं न नम्युं अेमने शीश ते जन कूडा रे ।
श्री अक्काजी कूखे अवतर्या सुखकारी रे ।।

हिन्दी के आधुनिक काल के अग्रदूत श्री भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अनेक पदों में श्री गोपीनाथजी का स्मरण किया है । साथ में आप गुसाँईजी का भी श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं । आपका पक्का विश्वास था कि गुरुवर गोपीनाथजी का प्राकट्य श्रीवल्लभाचार्यचरण के वंश में कल्पवृक्ष फलित होने के समान है । उनके रूप में मानो प्रियतम पुरुषोत्तम ही पधारे हैं । वे भक्तों को लीला रस के गुप्त भावों को प्रकट करके परम आनंद प्रदान करते हैं । वे पुष्टि-पथ को प्रकट करने के लिए ही भूतल पर अवतरित हुए हैं । उन्होने जगत के कल्याण के लिए ही मानव देह धारण की है । गोपीनाथजी तो अनाथ दीन जीवों, नि:सहाय अनाथों की गति हैं, उनके आश्रय हैं । जब भारतेन्दुजी ने गुरु-स्मरण किया तो महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी के बाद उन्होने अपने प्रिय आचार्य गोपीनाथजी का और श्री गुसाँईजी का स्मरण किया । वे

राधाकिशन अग्रवाल एवं सौ. तारादेवी अग्रवाल (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

गोपीनाथजी के पुत्र पुरुषोत्तमजी को भी नही भूले हैं। गुसाँईजी के सातों लालजी भी उनके ध्यान में आदरपूर्वक आते हैं-

गोपीनाथ अनाथ गति, जगगुरु विट्ठलनाथ।
जयति जुगल वल्लभ-तनुज, गावत श्रुति गुन-नाथ। (भक्त सर्वस्व-१३)
निज फलित प्रफुल्लित जग में जय वल्लभ-कुल-कलपतर।
गुरुवर गोपीनाथ प्रकट पुरुषोत्तम प्यारे। (उत्तरार्द्ध भक्तमाल-६२)
श्रीवल्लभ-सुत प्रथम प्रगट लीला-रस-भाव
गुप्त जय जय श्री गोपीनाथ भक्तन सुखदाई।
गावत गुन बेद चार तऊ नहीं पावै पार,
महिमा कोउ कहि न सकल गोप-वंश-राई।
पुष्टि-पथ-करन-काज प्रकटै हैं भूमि आज
गावत सब ब्रज-जन मिति आनंद-बधाई।
'हरीचन्द्र' जस गावै बहुत बधाई पावै।
देखत त्रैलोक सब बलि बलि जाई॥ (राग-संग्रह-१२७)
श्रीवल्लभ सुमिरौं अरु श्री गोपीनाथ पियारे।
श्रीविट्ठल पुरुषोत्तम जग-हित नर बपु धारे। (गुरु-स्मरण-११)

आपने श्री महाप्रभुजी, श्री गोपीनाथजी, श्री गुसाँई विट्ठलनाथजी के साथ ही गोपीनाथजी के लालजी श्री पुरुषोत्तमजी तथा श्री गुसाँई के सातों लालजी का भी गुरु-परम्परा में स्मरण किया है।

इनके अतिरिक्त प्राचीन कीर्तन संग्रहों में 'कृष्णदास' के द्वारा रचे हुए श्री गोपीनाथजी के बधाई के पद भी मिलते हैं। बधाई के रूप में कृष्णदास गोपीनाथजी के चरण-कमल की रज ही न्योछावर रूप में पाने को जीवन की धन्यता मानते हैं-

श्रीवल्लभ-सुत चरन-कमल-रज 'कृष्णदास' न्योछावर पाई।

श्री प्रेमलाल गो. मेवचा (पोरबन्दर) के मतानुसार 'श्री गोपीनाथजी की श्री महाप्रभुजी द्वारा स्थापित पुष्टिमार्गीय प्रणाली की कृष्ण भक्ति में पूर्ण श्रद्धा थी।

प्रा. रेखा सिंघल (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

इसके साथ ही आपश्री का जीवन वेदादि शास्त्रों की आज्ञानुसार गठित होने के कारण आपश्री का अग्निहोत्र आदि वैदिक क्रियाओं में भी विशेष आग्रह रहता था।'

श्री कंठमणि शास्त्री (कांकरोली) ने स्पष्ट किया है कि 'सं. १५८७ में श्रीवल्लभाचार्यजी ने अपने भगवद्धाम में वापस पधारने का समय समीप आया जानकर गोपीनाथजी को आवश्यक उपदेश दिया तथा शुद्धाद्वैत पुष्टि भक्ति सम्प्रदाय का उत्तरदायित्व सौंपा। (यदु.वि.पृ. ५५ के आधार पर) श्री गोपीनाथजी सरल और सात्त्विक जीवन के आग्रही व्यक्ति थे। इन पर श्रीवल्लभाचार्य के त्यागमय जीवन और तपस्या का प्रभाव अधिक पड़ा था।'

श्रीगोपीनाथजी के स्वरूप का उल्लेख श्री गुसांईजी के सेवक श्री माणिकचन्द की धमार पंक्ति में भी मिलता है - 'गुणनिधि श्रीगोपीनाथजु निर्गुण तेजनिधान।' गो. पुरुषोत्तमजी के द्वारा श्री गोपीनाथजी की वन्दना में इसी प्रकार गोपीनाथजी को गुणातीत, गुणनिधि और तेजोराशि कहा गया है।

'आपणा ज आचार्य श्री गोपीनाथजी' ग्रंथ में डॉ. पीयूषभाई परीख यह मत व्यक्त करते हैं- 'श्री गुसाँईजी ने 'विद्वन्मंडन' में आज्ञा की है कि 'भगवान् के धर्मी स्वरूप और धर्मस्वरूप दोनों एक ही हैं।' भगवान् स्वयं बड़े पुत्र गोपीनाथजी के स्वरूप में प्रमाण रूप से प्रकट हुए तथा छोटे पुत्र विट्ठलनाथजी के स्वरूप में प्रमेय रूप से प्रकट हुए। ---श्री गोपीनाथजी लोकदृष्टि से बड़े हैं किंतु लीलादृष्टि से समान हैं। वे पूर्णपुरुष और प्रमाण हैं अर्थात् वे पुरुषोत्तम रूप और प्रमाण रूप हैं। कहने का आशय यह है कि श्री गोपीनाथजी भीतर प्रमेय रूप और ऊपर प्रमाण रूप हैं। जबकि श्री गुसाँईजी भीतर प्रमाण रूप और ऊपर प्रमेय रूप हैं। ---- माणिकचन्दजी ने 'बालक सब ब्रह्म जान के जाको वेद विमल जस गाय' के रूप में श्री महाप्रभुजी से लेकर घनश्यामजी तक सभी को पूर्ण पुरुषोत्तम ही कहा है। --- गोपालदासजी के मुख में विराज कर गुसाँईजी ने (वल्लभाख्यान में) गोपीनाथजी को पूर्ण पुरुष के रूप में ही वर्णन किया है। इसलिए श्री गोपीनाथजी पूर्ण पुरुषोत्तम के ही प्राकट्य हैं, इस विषय में शंका के लिए सहज ही कोई स्थान नहीं रहता।'

श्रीमती सरजूबाई द्वारकादासजी नीमा (मंगलश्री, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्री देवेन्द्रभाई भाई शाह ने 'बडेन की वाणी-पुष्प १३- श्री गोपीनाथ प्रभुचरण विशेषांक' में स्पष्ट किया है कि 'वर्तमान में श्री गोपीनाथजी के विषय में बहुत भ्रान्त मान्यताएँ चल रही हैं, वे निराधार एवं द्वेषवश हैं, ऐसा लगता है। आपश्री का संपूर्ण चरित्र पुष्टिभक्ति से परिपूर्ण है तथा शास्त्रों के प्रति आपश्री का आदरभाव है। वैराग्यमय जीवन तो आपको श्री महाप्रभुजी से उत्तराधिकार में मिला था।'

'वैष्णव परिवार' की तंत्री वसन्त बेन परीख ने (आनन्द नो आविष्कार भाग ५) के रूप में प्रकाशित 'वैष्णव परिवार' की भेंट पुस्तक 'श्रीमद्वल्लभनंदन श्रीगोपीनाथजीप्रभुचरण चरित्रामृत' के प्रासंगिक में श्री गोपीनाथजी को 'त्याग की साक्षात् मूर्ति के समान, अहंता-ममता-रहित, विरक्त जीवन के अनुरागी, भगवत्सेवा परायण, पितृसेवा तत्पर, श्री विट्ठलनाथजी आदि समस्त स्वजनों के सुखदाता, शास्त्र की आज्ञानुसार अनुशासित जीवन जीकर वैष्णव जीवन का आदर्श चरितार्थ करके बताने वाले महानुभाव आचार्य के रूप में स्मरण करते हुए भक्तिभाव से आपश्री को वंदन किया है।'

'श्रीमद्वल्लभनंदन श्री गोपीनाथजी प्रभुचरण चरित्रामृत' के लेखक श्री नंदकिशोर खंघडीया ने अत्यंत भावपूर्ण शब्दों में कुछ प्रश्न उपस्थित किये हैं- 'हम भगवत्स्वरूप श्रीवल्लभ के प्रतिनिधि के नाम का जयघोष सत्संग सभाओं में क्यों नहीं करते हैं? आपश्री के द्वारा दीक्षित वैष्णवों के नामों एवं चरित्रों का शोधकार्य क्यों नहीं करते हैं? आपश्री की बैठकजी प्रकट क्यों नहीं करते हैं? एकांत-प्रिय एवं मितभाषी होने के कारण एकांत में भगवद्-ध्यान में विशेष रहने के कारण आपश्री में रहने वाला भगवद्-अंश क्या न्यून हो जाता है? 'वल्लभाख्यान' में श्री गोपीनाथजी को 'पूरण पुरुष' कहने वाले गोपालदासजी को क्या हम अज्ञानी कहेंगे? हम अपने मन से श्री गोपीनाथजी को 'मर्यादा पुरुष' में खपा देने वाले कौन होते हैं? धिक्कार है हमें जिन्होंने श्रीवल्लभनंदन गोपीनाथजी की ऐसी घोर उपेक्षा की। इसका एकमात्र उपाय यही है कि हम सच्चे हृदय से इसके लिए पश्चात्ताप करें। (पृष्ठ १७६-१७७)

चिमनलालजी वल्लभदासजी नीमा (श्रीवल्लभा ज्वेलर्स, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

साधन दीपिका

मङ्गलाचरण

श्लोक- ता नः श्रीतातपत्पद्मरेणवः कामधेनवः ।
नाकस्य तरवोन्येषां स्युः कल्पतरवो यथा ॥१॥

भावार्थ-जैसे दूसरों के लिए कामनाओं की पूर्ति करनेवाले स्वर्ग के कल्पवृक्ष और कामधेनु होते हैं, वैसे ही हमारे लिए तो समस्त मनोरथों की पूर्ति करने वाले कल्पवृक्ष और कामधेनु पिताजी श्रीमद्वल्लभाचार्य के चरणकमलों की रज हैं॥१॥

श्लोक- श्रुतिस्मृतिशिरोरत्ननीराजितपदाम्बुजम् ।
यशोदोत्संगललितं वंदे श्रीनन्दनन्दनम् ॥२॥

भावार्थ- वेद और स्मृति शास्त्र रूपी उत्तम रत्नों से जिनके चरणकमल शोभायमान हैं, ऐसे श्रीयशोदाजी की गोद में क्रीड़ा करनेवाले श्रीनन्दरायजी के पुत्र श्रीकृष्ण को मैं वंदन करता हूँ॥२॥

श्लोक- भक्तिमार्गवितानाय योऽवतीर्णो हुताशनः ।
स एव नः परं मानं शेषमस्य प्रमान्तरम् ॥३॥

भावार्थ-भक्तिमार्ग के प्रचार-प्रसार के लिए ही वैश्वानर अग्निस्वरूप श्रीमद्वल्लभाचार्य ने भूतल पर अवतार धारण किया है अतः उनके वचन ही हमारे लिए परम प्रमाण हैं, अन्य सभी प्रमाण उनके वचनों के अंगभूत, गौण प्रमाण हैं। जो अन्य प्रमाण आचार्य-सम्मत हैं, वे ही हमें स्वीकार हैं॥३॥

श्लोक- वेदत्रयीशिरोभागसूत्रव्याख्यानसम्मतम् ।
भक्तिशास्त्रानुसारेण कुर्वे साधनदीपिकाम्॥४॥

भावार्थ-वेदों के शिरोभाग रूप उपनिषद्, ब्रह्मसूत्रों पर महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य के अणुभाष्य से सम्मत, अनुकूल और अविरोधी भाष्य तथा श्रीमद्भागवत, श्रीमद् भगवद् गीता, वैष्णवतंत्र पंचरात्र आदि भक्ति शास्त्रों के अनुसार 'साधन दीपिका' नामक इस ग्रंथ की रचना करता हूँ॥४॥

विट्ठलदासजी गोपालजी सराफ (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

सन्दर्भ -वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्यास सूत्राणि चैव हि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्॥ (शास्त्रार्थ प्रकरण-७)

श्री हरिभजन की आवश्यकता का प्रतिपादन

श्लोक- 'आत्मा वार' इति श्रुत्या दर्शनैकफलो विधिः।
श्रवणाद्यैः प्रतिज्ञात'स्तं भजेत्तं रसेदि'ति ॥५॥

भावार्थ- 'आत्मा (परमात्मा) का दर्शन करना चाहिए', श्रवण करना चाहिए, मनन करना चाहिए, निदिध्यासन करना चाहिए' इस वेदवाक्य से परमात्मा के दर्शन के लिए प्रभु के श्रवण-मनन-निदिध्यासन की प्रक्रिया बतायी गई है। इसी प्रकार 'उस परमात्मा का भजन करें। उसके रस का अनुभव करें, ऐसे भी श्रुति वचन हैं।

सन्दर्भ- 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य' यह श्रुतिवचन बृहदारण्यकोपनिषद् २/४/५, एवं ४/५/६ का है।

श्लोक- 'तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्' ॥६॥

भावार्थ- श्रुति के समान स्मृति में भी कहा गया है- 'हे अर्जुन! अभय प्राप्त करने की इच्छावाले जीव को सबके आत्मा, भगवान्, ईश्वर श्रीहरिः का श्रवण-कीर्तन-स्मरण करना चाहिए।

श्लोक- पुरुषस्याविशेषेण संसारं प्रजिहासतः।
हरेराराधने मुक्तिस्तत्प्रकारो निरूप्यते ॥७॥

भावार्थ- इन श्रुतिस्मृति के वचनों से सिद्ध होता है कि (अहंता-ममतात्मक) संसार को छोड़ने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के लिए प्रभु श्रीकृष्ण की आराधना ही मुक्ति रूप है।

गुरु आवश्यक क्यों है ?

श्लोक- माहात्म्यज्ञानपूर्वो हि सुदृढः सर्वतोधिकः।
स्नेहो भक्तिरितिप्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा ॥८॥

सन्दर्भ- यह श्लोक श्रीमहाप्रभुजी कृत शास्त्रार्थ प्रकरण-४२ से लिया गया है।

गोविन्ददास वल्लभदासजी (श्री यमुना ज्वेलर्स, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्लोक- माहात्म्यज्ञानज्ञापनायैव श्रवणं गुणकर्मणाम् ।
शास्त्राणामुपयोगोऽत्र तत्राकांक्षा गुरोर्भवेत् ।।९।।

भावार्थ- वह भगवद् भजन रूप मुक्ति जिस साधन से प्राप्त की जा सकती है, उस साधन का अब निरूपण करता हूँ। भगवान् के माहात्म्यज्ञानपूर्वक, प्रभु में सुदृढ और सबसे अधिक स्नेह को शास्त्रों में भक्ति कहा गया है। ऐसी भक्ति से ही मुक्ति होती है। अन्य किसी प्रकार से, अन्य किसी साधन से मुक्ति नहीं होती, प्रभु के गुणों एवं कर्मों का श्रवण करना ही उनके माहात्म्य के ज्ञान का साधन है। भगवान् के गुणों और कर्मों का ज्ञान शास्त्र से होता है और शास्त्र के अध्ययन के लिए गुरु की आवश्यकता होती है।

यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथोपायो निरूप्यते ।
बीजभावे दृढे तु स्यात् त्यागात् श्रवण कीर्तनात् ।।

(भक्तिवर्धिनी)

श्लोक- कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दंभादिरहितं नरम् ।
श्रीभागवततत्त्वज्ञं भजेज्जिज्ञासुरादरात।।१०।।

सन्दर्भ- यह श्लोक सर्वनिर्णय प्रकरण-२२७ का है।

भावार्थ- गुरु कैसा हो ? जो कृष्ण-सेवा में तत्पर हो, दम्भ आदि दुर्गुणों से रहित हो और श्रीमद् भागवत के तत्त्व को जानने वाला हो, ऐसे ही पुरुष को देखकर, परखकर गुरु बनाना चाहिए तथा उन्हीं की सेवा-सत्संग करना चाहिए।

गुरु का प्रथम कर्त्तव्य

श्लोक- देहद्रोण्या वियासूनां परं पारं भवाम्बुधेः ।
गुरुणा कर्णधारेण उत्तार्या स्वोपदेशतः ।।११।।

भावार्थ- मानवदेह को नाव बनाकर जो दैवीजीव संसार-समुद्र के पार जाने की इच्छा वाले हैं उनकी नाव के कर्णधार (खिवैया) बनकर गुरु को उन्हें अपने उपदेशों से पार उतारना चाहिए।।११।।

मनसुखलाल वल्लभदासजी नीमा (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्लोक - यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ।।१२।।

भावार्थ- जो पूर्व में ब्रह्माजी को बनाता है और उन्हें वेदों का दान देता है, उन आत्म बुद्धि से प्रकाशित होने वाले देव की शरण में मैं जाता हूँ।।१२।।

सन्दर्भ - (श्वेताश्वतर उपनिषद् ४/५ गोपालपूर्वतापिनी उपनिषद् ४/५)

श्लोक- सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
इति श्रुत्या तथा स्मृत्या प्रपत्त्यादेशमादितः ।।१३।।

भावार्थ- भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आज्ञा की है कि तू सब धर्मों का परित्याग करके केवल मेरी शरण में आ जा।

सन्दर्भ- श्रीमद् भगवद्गीता १८-६६

अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः। विवेकधैर्याश्रय ११

श्लोक- प्रेम्णोपदेशश्रवणात्प्रपत्तेः प्रेमकारणम्।
अतो मूलाभिषेको हि कार्यस्तेनास्य सेवने ।।१४।।

भावार्थ- श्रुति-स्मृति में भगवान् की शरणागति को ही सर्वप्रथम साधन बताया गया है। उपर्युक्त लक्षणवाले गुरु के द्वारा भगवत् शास्त्रों के उपदेश प्रेमपूर्वक (श्रद्धापूर्वक) सुनने से शरणागति सिद्ध होती है। भगवान् के प्रति प्रेम हो जाता है। आज भगवत्-प्राप्ति के अन्य शास्त्रीय साधन दुःसाध्य हो गये हैं अतः सभी साधनों के मूलभूत साधन भगवत्-शरणागति रूप उपाय का ही अवलम्बन लेना चाहिए।।१४।।

भक्तिशास्त्र के अनुकूल एवं श्रीमदाचार्य सम्मत स्वधर्माचरण आवश्यक

श्लोक- न हि देहभृता शक्यं कर्म त्युक्तुमशेषतः।
अतः स्वधर्माचरणं भारद्वैगुण्यमन्यथा ।।१५।।

हीरालाल कन्हैयालालजी महाजन (कृष्ण ज्वेलर्स, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

स्वधर्माचरणं शक्त्या ह्यधर्मात्तु निवर्तनम् ।
इन्द्रियाश्वविनिग्राहः सर्वथा न त्यजेत् त्रयम् ॥१६॥
इति भागवतो धर्मः श्रीमदाचार्यसंमतः ।
भक्तिशास्त्रानुकूल्येन स्वधर्माचरणं भवेत् ॥१७॥

भावार्थ- कोई भी देहधारी कर्मों को पूरी तरह से त्याग नहीं सकता है। यह उसके लिए असंभव है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार स्वधर्म का आचरण करे। यदि कोई ऐसा नहीं करता है तो उस पर अपराध या दोष का दुगना भार होता है अर्थात् पहला दोष तो यह होता है कि वह स्वधर्म के आचरण की उपेक्षा कर रहा है और दूसरा दोष यह होता है कि वह स्वच्छन्द आचरण करता है॥१५॥

अतः व्यक्ति को स्वधर्म के अनुसार आचरण करना चाहिए, अधर्मपूर्ण आचरण से सर्वथा दूर रहना चाहिए और इन्द्रियरूपी घोड़ों को नियंत्रण में रखना चाहिए। इन तीनों बातों का त्याग कभी भी नहीं करना चाहिए॥१६॥

इस प्रकार का भागवतधर्म श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभुजी को मान्य है। वर्णाश्रम धर्म का पालन भक्तिशास्त्र के अनुकूल किया जाना चाहिए॥१७॥

सन्दर्भ- नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणः। भगवद् गीता ३/५

स्वधर्म निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। वही- ३/३५
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। वही १८/४५
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः। वही १८/४६
सर्वनिर्णय - २३८- स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम्।
इन्द्रियाश्वविनिग्राह सर्वथा न त्यजेत् त्रयम्॥

द्विज के लिए सोलह संस्कार और शौचाचार आवश्यक

श्लोक- गर्भाधानादिसंस्कारैर्द्विजैर्मौञ्जयंतसम्भवैः ।
देहः संशोधनीयो हि हरिभावो न चान्यथा ॥१८॥

सुभाषजी गुप्ता (संगम ज्वेलर्स, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

भावार्थ- गर्भाधान आदि सोलह संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) को करना चाहिए। इससे देह की अच्छी तरह से शुद्धि होती है। ऐसी पवित्र देह में भगवद् भाव की योग्यता आती है। अन्यथा व्यक्ति में दिव्य भगवद् भाव की पात्रता नहीं आ पाती है॥१८॥

श्लोक- शौचाचारविहीनस्य आसुरावेशसंभवात् ।
ततः स्वाह्निकधर्माणामाचारोऽपि प्रसज्यते ॥१९॥

भावार्थ- जो व्यक्ति शौच (शुद्धि) करनेवाले आचार का ठीक ढंग से पालन नहीं करता उनके देह तथा इन्द्रियों में आसुरावेश की पूरी संभावना रहती है। इसलिए वैष्णवों के लिए दैहिक शुद्धि, स्वधर्माचरण तथा आचारों का विधान किया गया है। उनका पालन करना चाहिए॥१९॥

श्लोक- स्नानं संध्या जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
वैश्वदेवदेवार्चा इति षट्कर्मकृद् भवेत् ॥२०॥

भावार्थ- द्विजों के नित्य कर्म हैं- स्नान, संध्या और जप, होम, वेद तथा भक्ति ग्रन्थों का अध्ययन पितृतर्पण, वैश्वदेव-देवार्चन ये छः कर्म द्विजों को नित्य करना चाहिए॥२०॥

श्लोक- यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलाभिषेचनम् ।
तथा सर्वार्हणं यस्मात्परिचर्याविधिर्हरेः ॥२१॥

भावार्थ- जैसे वृक्ष की जड़ में जल सींचने से वृक्ष के पत्ते, शाखाएँ आदि सभी अंगों तक जल पहुँच जाता है और उन्हें पोषण मिल जाता है, इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा विधिपूर्वक करने से सबकी पूजा हो जाती है।

सन्दर्भ- सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः। चतुःश्लोकी -१

श्लोक- अतस्तदनुरोधेन नित्यकर्मकृतिर्वरा ।
अन्यथा तु कृतिर्व्यर्था त्रैवर्ग्यविषया यतः ॥२२॥
गर्भाधानादिसंस्कारैः स्वशाखोक्तैर्द्विजो युतः ।

रमेशचन्द्रजी रतनलालजी अग्रवाल परिवार (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

इसलिए उसके (श्रीकृष्ण सेवा के) अनुरूप ही नित्य कर्म करना चाहिए। यही श्रेष्ठ है। यदि ऐसा न करते हुए स्वतंत्र रूप से कर्मों का अनुष्ठान किया जावे तो ऐसे कर्म निष्फल, व्यर्थ होते हैं क्योंकि कर्मों से पूजनीय तो पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही हैं। यदि स्वतंत्र रूप से कर्म किये जावें तो ऐसे कर्म धर्म-अर्थ-काम-रूपी त्रिवर्ग की सिद्धि ही करते हैं। इन कर्मों से मुक्ति नहीं मिलती है। ऐसे कर्म तो बंधन करनेवाले होते हैं॥२१॥

भावार्थ-इसलिए द्विज को अपने वेद की शाखा के अनुसार गर्भाधान आदि संस्कार करना चाहिए और गुरु की शरण में जाकर भगवान् की सेवा करनी चाहिए॥२२॥

जो द्विज नहीं हैं, ऐसे वैष्णवो का कर्त्तव्य -

श्लोक - गुरुं प्रपद्येदन्यस्तु सदाचारोऽस्य संश्रयात् ॥२३॥

भावार्थ-अन्य वैष्णव जो द्विज नहीं है, वे शास्त्रों में कहे अनुसार स्वधर्म परायण एवं संयमी वैष्णवों के संसर्ग में रहकर, सदाचार-परायण होकर गुरु की शरण में जावें॥२३॥

वैष्णव धर्म में दीक्षित व्यक्ति का कर्तव्य

श्लोक- लब्धानुग्रहमाचार्यात् श्रीकृष्णशरणं जनः ।
धारयेत्तिलकं मालां वैष्णवाचारतत्परः ॥२४॥
सर्वस्वं हरिसात्कार्यं त्यजेत् सर्वमवैष्णवम् ।
हिंस्रकाम्यान्यदेवार्चा यदि नित्यं च लौकिकम् ॥२५॥
पूर्वभांडादिकं सर्वं परित्यज्य विशुद्धितः ।
श्रवणादिपरो नित्यं हरेः प्रेमास्पदो भवेत् ॥२६॥

भावार्थ- पुष्टिमार्ग में जिसकी रुचि हो वह व्यक्ति आचार्य के अनुग्रह रूप 'प्रभु श्रीकृष्ण ही मेरे शरण स्थल हैं', ऐसी शरण दीक्षा प्राप्त करे। तिलक धारण करे, तुलसी की माला पहने तथा वैष्णवोचित आचार का पालन करे॥२४॥

वल्लभदास कन्हैयालालजी नीमा (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

वह जो भी करे वह सब प्रभु के लिए, उनके आश्रित होकर ही करे, सर्वस्व प्रभु को समर्पित कर दे। सभी प्रकार के अवैष्णव आचार छोड़ दे। ऐसे कार्य जिनमें हिंसा होती हो, ऐसे कर्म जो किसी प्रकार की कामना से किये जाते हों तथा अन्य देवों की पूजा छोड़ दे। वैष्णवमार्ग के विपरीत नित्य-नैमित्तिक शास्त्रीय कर्म और ऐसे ही जो वैष्णवचित न हों उन लौकिक कर्मों का भी त्याग कर दे ।।२५।।

वैष्णव दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व जिन पात्रों आदि का उपयोग अपने लिए किया जाता था उन्हें हटा दे तथा नये पात्रादिकों का शुद्धतापूर्वक प्रयोग करे। अर्थात् स्नान-खानपान-वस्त्र-स्पर्श आदि में शुद्धि का विशेष ध्यान रखे भगवत्-सम्बन्धी श्रवण, कीर्तन आदि में सतत तत्पर रहे। ऐसा भक्त प्रभु को प्रिय होता है ।।२६।।

सप्तविधा भक्ति

श्लोक- हरेर्गुणानां श्रवणं ज्यायोभ्यः शृणुयात्सदा ।
जातशिक्षः यवीयेभ्यः कीर्तयेदन्यथैकलः ।।२७।।
अतिसुन्दररूपाणि लीलाधामानि संस्मरेत्।
पादसेवा हरेः कार्या सर्वसंपन्निकेतनैः ।।२८।।
अर्चनं प्रत्यहं तस्य विधिना नियमेन च ।
वन्दनं चरणाम्भोजे तस्य भावनयाखिले ।।२९।।
दास्यं तदेकशरणं तत्प्रसादैकभोजनम् ।
एवं सप्तविधा भक्तिः प्रपन्नाधिकृता भवेत् ।।३०।।

भावार्थ- प्रभु के नाम-गुण-कर्म आदि का नित्य-श्रवण करे। बड़ों से श्रवण करे और छोटों के लिए कीर्तन करे। यदि उसे भगवत्-गुणानुवाद का, कीर्तन का उचित ज्ञान न हो तो उसकी शिक्षा प्राप्त करे, स्वाध्याय करे। यदि कोई कीर्तन के लिए उपलब्ध न हो तो अकेला ही कीर्तन करे। श्रवण-कीर्तन आदि में परायण भक्त प्रभु श्रीकृष्ण का प्रेम-भाजन बन जाता है। प्रभु उस पर कृपा करके उससे प्रेम करने लगते हैं, वह उनका निजजन हो जाता है। (२६-२७)।

इसी प्रकार प्रभु के सुन्दर स्वरूप और उनके दिव्य लीला-धामों को सतत

महेशजी मनसुखलालजी अग्रवाल (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

स्मरण करता रहे। अपने घर में अपने तन-धन और उपलब्ध साधनों से श्री हरि के चरणकमलों की सेवा अवश्य करे॥ २८॥

प्रतिदिन नियमपूर्वक पुष्टिमार्गीय रीति से प्रभु की सेवा-अर्चन करे। प्रभु के चरणों में वन्दन करे। इतना ही नहीं सम्पूर्ण जगत् भगवान् का ही रूप है, मैं भी भगवान् का ही अंश हूँ। इस भावना से भगवान् के चरण-कमलों में वन्दन करे॥ २९॥

एकमात्र प्रभु श्रीकृष्ण की शरण, केवल उनका ही आश्रय और उन्हीं को समर्पित सामग्री को ही प्रसाद के रूप में ग्रहण करने वाला जन दास कहलाता है।

इस प्रकार श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन, वन्दन, पादसेवा और दास्य रूपा सात प्रकार की भक्ति से जीव की प्रभु में शरणागति सिद्ध होती है॥ ३०॥

संदर्भ- नवधा भक्ति-श्रवणं कीर्तनं विष्णो : स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्॥ भागवत ७/५/२३
(२) उपनिषद् सम्पूर्ण जगत् की कृष्णमयता का ही उपदेश देते हैं-सर्वं खल्विदं ब्रह्म। छान्दोग्य उपनिषद्
(३) महाप्रभुजी का ब्रह्मवाद भी यही बताता है-
आत्मैव तदिदं सर्वं ब्रह्मैव तदिदं तथा सर्वनिर्णय-१८४
(४) वासुदेवः सर्वम् इति। गीता ७/१९

वैष्णव व्रतोत्सव

श्लोक- पूर्वविद्धं परित्याज्यं व्रतं तद्विष्णुपंचकम्।
जयन्ति तूदयेऽन्येन दुष्टान्याप्यरुणोदयात्॥३१॥

वर्षाश्रितान्युत्सवानि स्वाश्रितान्यपि यान्युत।
तानि सर्वाणि हरयेऽनुकूलानि चार्पयेत्॥३२॥

भावार्थ-पाँच व्रत- रामनवमी, नृसिंह चतुर्दशी, वामनद्वादशी और जन्माष्टमी (चार जयंती) एवं एकादशी ये पाँच व्रत विष्णु पञ्चक कहलाते हैं। इन उत्सवों एवं व्रतों को वैष्णव ने अवश्य करना चाहिए। ये व्रत वेधयुक्त नहीं करना

मोहनलालजी बाबूलालजी अग्रवाल (द्वारकेश ज्वेलर्स, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

चाहिए अर्थात् जिस व्रत की तिथि में पूर्व तिथि वेध, मेल आता हो, उस दिन वह व्रत नहीं करना चाहिए। सूर्योदय के समय जो तिथि हो, उसी को उस दिन की तिथि मानकर जयन्ती व्रत तथा एकादशी करनी चाहिए।।३१।।

वर्षभर में जो उत्सव आते हैं तथा अपने विशेष मनोरथ वाले जो उत्सव हों, उस समय साधन-सम्पत्ति, स्वास्थ्य, समयऋतु आदि की अनुकूलता के अनुसार सामग्री प्रभु को अर्पित कर प्रभु के साथ आनन्दपूर्वक मनाना चाहिए।।३२।।

सन्दर्भ-सर्वनिर्णय-२४५

पञ्चयज्ञ प्रभु-प्रसाद से

श्लोक- श्राद्धानि चोत्तमान्येव वैश्वदेवं च दैवकम् ।
हरेः प्रसादतः कुर्यात्ततस्तृप्तिरनुत्तमा ।।३३।।

प्रसादोऽपि बलिः कार्यः स्वात्मसंस्कार एव सः ।
अन्नस्य चात्मनश्चापि तत्संस्कारेण तत्परः ।।३४।।

विप्रा गावो हरेर्भक्ताः सदा पूज्या हरेः प्रिया : ।
गृहस्थस्यातिथिर्यस्मात् पूज्यो दीनो दयास्पदः ।।३५।।

भावार्थ- श्राद्ध, विश्वदेव और अन्य देवता-सम्बधी उत्तम कार्य प्रभु के प्रसाद से ही करने चाहिए। इससे पितरों को और देवताओं को सर्वोत्तम प्रकार से तृप्ति होती है ।।३३।।

गोग्रास आदि भूतयज्ञ (बलि) भी प्रभु के महाप्रसाद से ही करना चाहिए क्योंकि प्रभु-प्रसाद से अपनी आत्मा का संस्कार होता है तथा अन्न का भी संस्कार होता है इसलिए वैष्णव को आत्मा के तथा अन्न के संस्कार में तत्पर रहना चाहिए।।३४।।

ब्राह्मण, गाय और भगवान् के भक्त प्रभु को प्रिय होते हैं, इसलिए इन्हें पूजनीय मानकर इनका सदा सत्कार करना चाहिए। गृहस्थ के लिए अतिथि पूज्य होता है अतः आये हुए अतिथि का सत्कार करना चाहिए। दीन-दुःखी सदा दया के पात्र होते हैं इसलिए दीन-दुःखियों के प्रति सदा दया का भाव रखना

प्रेमनारायणजी सुगन्धी (सुगन्धी एप्लायंसेस, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

चाहिए॥३५॥

तीर्थवास कहाँ और कैसे ?

श्लोक- जगन्नाथे द्वारिकायां श्रीरंगे व्रजमण्डले ।
यत्र पूजाप्रवाहः स्यात्तत्र तिष्ठेच्च तत्परः ॥३६॥
गंगादितीर्थवर्येषु यथा चित्तं न दुष्यति ।
श्रवणाद्यैर्भजेदेवं श्रीभागवततत्परः ॥३७॥

भावार्थ-जगन्नाथपुरी, द्वारिका, श्रीरङ्गजी और व्रजमण्डल में, जहाँ भी पूजा का अखण्ड प्रवाह चलता हो वहाँ भगवत्परायण होकर रहना चाहिए॥ ३६ ॥

गङ्गाजी आदि श्रेष्ठ तीर्थों में, जहाँ अति निकटता के कारण अनादर का भाव चित्त को दूषित न करे, इस प्रकार रहे। प्रभु का भजन श्रवण-कीर्तन आदि से करता रहे। साथ ही श्रीमद् भागवत के पाठ-अध्ययन-श्रवण-मनन आदि में तत्पर रहे॥ ३७॥

सन्दर्भ-जगन्नाथे विट्ठले च श्रीरङ्गे वेङ्कटे तथा। यत्र पूजाप्रवाह : स्यात् तत्र तिष्ठेत् तत्पर : ॥ सर्व निर्णय प्रकरण२५५

(२) अतः स्थेयं हरि स्थाने तदीयैः सहतत्परैः। अदूरे विप्रकर्षेवा यथा चित्तं न दुष्यति। भक्तिवर्धिनी-८

वैष्णवता के बाहरी एवं आन्तरिक चिह्न

श्लोक- ऊर्ध्वपुण्ड्राणि मृन्मुद्रास्तुलसीकाष्ठजापि स्रक् ।
बाह्यांकान्यान्तराणि स्युः भक्ते शान्तिविरक्तयः ॥३८॥
शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
दया दानं च विज्ञानं श्रद्धा दैवात्मसम्पदः ॥३९॥
देवात्मसम्पदः पुंसः भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ।
यया सर्वात्मभावाख्या परा सिद्धिः स्वयं भवेत् ॥४०॥
सर्ववस्तुषु वैराग्यं दोषदृष्ट्या विभावयेत् ।
दमनादिन्द्रियाणां च संतुष्ट्यापि च सिद्धयति ॥४१॥
सर्वत्रैव विरक्तस्य रागः स्यान्नन्दनन्दने ।
तेनासक्तिश्च व्यसनं प्रपंचास्फुरणं भवेत् ॥४२॥

रंगीलचन्द पन्नालालजी अग्रवाल सराफ (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

एवं निरुद्धचित्तस्यानुगृहीतस्य चेशितुः ।
लीलाप्रवेशोऽपीष्टश्च तस्मान्मच्छरणोक्तितः ॥४३॥

भावार्थ-ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, गोपीचन्दन से मुद्रा और तुलसी काष्ठ की माला ये पुष्टि भक्तिमार्गीय वैष्णव के बाहरी चिह्न हैं। शान्ति और विरक्ति वैष्णव के आन्तरिक लक्षण हैं॥ ३८॥

शम (आन्तरिक इन्द्रियों का संयम), दम (बाहरी इन्द्रियों का संयम), तप (प्रसन्नता से कष्ट सहन करना), शौच (पवित्रता), क्षान्ति (धैर्य/क्षमा शीलता/सहिष्णुता), आर्जव (सरलता), दया, दान, विज्ञान (तत्त्वज्ञान), श्रद्धा आदि दैवी जीवों के गुण हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद् भगवद् गीता में इन्हें दैवी सम्पदा कहा है। (अध्याय १६, श्लोक १ से ३) इन दैवी गुणों से भक्त की भक्ति नैष्ठिकी, सुदृढ निष्ठा वाली होती है। भक्ति नैष्ठिकी होने पर 'सर्वात्मभाव' के नाम से जानी जाने वाली उत्कृष्ट सिद्धि स्वयं ही, अपने आप प्राप्त हो जाती है॥३९-४०॥

सांसारिक पदार्थों में दोष-दृष्टि रखकर वैराग्य की विशेष भावना करे। इन्द्रियों के दमन और सन्तोष रखने से भी निश्चित रूप से वैराग्य सिद्ध होता है॥४१॥

जिसे सर्वत्र (सांसारिक पदार्थों- व्यक्तियों में) वैराग्य हो जाता है, उसे ही नन्दनन्दन प्रभु श्रीकृष्ण में राग (प्रेम) होता है। उसी भगवत्प्रेम से भगवान् में आसक्ति और भगवद्-आसक्ति से व्यसन की स्थिति (जब भक्त एक क्षण भी प्रभु के बिना नहीं रह पाता) प्राप्त होती है और तब उसे प्रपंच (जगत्) की स्मृति ही नहीं होती है। उसके मन का प्रभु में पूरी तरह से निरोध हो जाता है॥४२॥

इस प्रकार जिसका चित्त पूरी तरह से प्रभु में निरुद्ध हो जाता है, उस भक्त पर प्रभु की कृपा हो जाती है। बस उसकी एक ही कामना होती है कि प्रभु की लीला के परमानन्द का अनुभव करे। उसीका प्रभु की लीला में प्रवेश संभव है, यही उसी का लक्ष्य है, इष्ट है। उस स्थिति में भगवान् ही उसके एकमात्र आश्रय और रक्षक बन जाते हैं जैसे कि इन्द्र के द्वारा गोकुल पर घनघोर वर्षा के समय प्रभु ने कहा था- 'मैं ही

परमानन्द व्रजभूषणदास मोदी (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

गोकुल का शरण (आश्रय) हूँ।' प्रभु उस तदीय को अपना अर्थात् मदीय बना लेते हैं॥४३॥

सन्दर्भ- (१) शङ्खचक्रादिकं धार्यं मृदा पूजाङ्गमेव तत्।

तुलसीकाष्ठजा माला तिलकं लिङ्गमेव तत्। सर्वनिर्णय-२४४

(२) तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं - भागवत-१०/२५/१८

(३) स्नेहाद् रागविनाशः स्याद् यदा स्यात् व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात् तदैव हि ॥ - भक्तिवर्धिनी ४-५

तादृशी वैष्णव की स्थिति

श्लोक- न पापं स करोत्येव प्रमादे त्वाशु निष्कृतिः।
अज्ञातस्खलितानां च हरिरेव परा गति :॥४४॥

हरिभक्तापराधेषु दययैव प्रसीदति।
दोषेषु न गतिस्तस्मान्दोषान् संपरिवर्जयेत्॥४५॥

अशून्या दिवसा यामाः मुहूर्त घटिका लवाः।
भगवद्भजनैः कार्या संसारासक्तिरन्यथा॥४६॥

भावार्थ- ऐसा भगवदीय कभी कोई पाप नहीं करता। यदि अनजाने में या प्रमादवश कोई निन्दित/ निषिद्ध आचरण उससे हो भी जाता है तो वह शीघ्र ही उससे बाहर निकल जाता है। अज्ञान से स्खलन अर्थात् अपराध होने की स्थिति में उसके लिए श्रीहरि ही एकमात्र एवं अन्तिम साधन हैं। उसके लिए प्रभु ही परम गति हैं॥४४॥

भक्तों के लिए अपराध की स्थिति में भी भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई गति (उपाय) नहीं है। इसलिए भक्तों को दोष सम्पूर्ण रूप से त्याग देने चाहिए। प्रभु तो अपने भक्तों पर दया करके प्रसन्न ही होते हैं किन्तु प्रभु को किसी प्रकार का श्रम न हो इसलिए भक्तों को सावधान रहना चाहिए कि अनजाने में भी हमसे कोई अपराध न हो जाए॥४५॥

रामदास विट्ठलदास अग्रवाल (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

कोई दिन, कोई प्रहर, कोई मुहूर्त, कोई घड़ी, कोई क्षण भगवद्-भजन के बिना न बीते, यह ध्यान रहे; क्योंकि क्षणमात्र भी भगवद्-भजन के बिना रहने से संसार में आसक्ति हो जाती है ॥४६॥

(प्रहर तीन घंटे का, मुहूर्त ४८ मिनिट का, घड़ी २४ मिनिट और लव क्षण भर का समय होता है।)

शरणागत शिष्य की भावना एवं कर्त्तव्य

श्लोक- गुरुसेवा गुरोराज्ञा गुरौ श्रीहरिभावना।
गुरौ भयं गुरौ सिद्धिः प्रपन्नः परिभावयेत् ॥४७॥

भावार्थ- शरणागत शिष्य गुरु की सेवा करे, गुरु की आज्ञा का पालन करे, गुरु में श्रीहरि की भावना करे, गुरु का भय रखे, गुरु में ही सिद्धि है, यह भावना रखे ॥४७॥

भक्ति कैसे सिद्ध होती है ?

श्लोक- भक्तवृन्दान्नमेदर्चेद् दृष्टवा हृष्येत् हर्षं समानयेत् ।
भक्तेष्वेवं हरिं साक्षात्प्रसादेन व्यवस्थितम् ॥४८॥

भावार्थ- भक्तों में श्रीहरि प्रसन्नता पूर्वक विराजते हैं, अतः भक्तों में साक्षात् भगवान् को देखे। भक्तों को देखकर प्रसन्न हो, उन्हें प्रणाम करे तथा उनका सम्मान-सत्कार करे। भक्तों को आदरपूर्वक घर में बुलावे ॥४८॥

सन्दर्भ- अहं भक्तपराधीनः। (भागवत ९/४/६३)

श्लोक- विना भक्तप्रसंगेन सद्गुरोः कृपया बिना ।
श्रीभागवतशास्त्रेण विना भक्तिः कथं भवेत् ॥४९॥

भावार्थ- बिना भगवद् भक्तों के संग के, बिना सद्गुरु की कृपा के तथा श्रीमद् भागवत शास्त्र के बिना प्रभु श्रीकृष्ण में भक्ति कैसे हो सकती है ? ॥४९॥

श्लोक- विना गद्गद्कण्ठेन द्रवता चेतसा विना ।
विना नृत्येन गानेन हरिप्रीतिः कथं भवेत् ॥५०॥

रामाजी किशनलालजी मोदी एंड संस (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

भावार्थ-यदि भगवद् लीला-गुणगान और कीर्तन के समय भावावेश में कण्ठ गद्गद् न हो, प्रभु का स्मरण करते समय चित्त भगवत्-प्रेम से द्रवित न हो, यदि लोक-लाज छोड़कर प्रभु के सम्मुख नृत्य और कीर्तन न किया जाए तो प्रभु में प्रेम कैसे हो सकता है ? ॥५०॥

श्लोक- **दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।**
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥५१॥

भावार्थ-भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं कहा है- 'यह मेरी त्रिगुणात्मक माया निश्चय ही बड़े कष्ट से जीती जा सकती है। जो मेरा शरण में आता है, वही मेरी इस माया के पार जा सकता है॥५१॥

सन्दर्भ- श्रीमद् भगवद् गीता ७/१४ का श्लोक है।

ब्रह्मवाद का सिद्धांत

श्लोक- **क्रीडार्थमसृजत्पूर्वं स्वात्मना स्वात्मकं जगत् ।**
तत्र कायभवा पुष्टिः लीलासृष्टिरनुत्तमा ॥५२॥

भावार्थ-भगवान् ने अपने आपमें से इस जगत् को क्रीड़ा के लिए बनाया है। यह जगत् भगवत्स्वरूप ही है (स्वात्मक)। इस जगत् में जो दैवी जीव हैं, उन पुष्टि जीवों को भगवान् ने अपना काया से प्रकट किया है इसलिए पुष्टि सृष्टि का प्रभु की उत्तमोत्तम लीला में अंगीकार है॥५२॥

सन्दर्भ :-१. इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः।
वचसा वेदमार्गं हि पुष्टि कायेन निश्चयः। (पुष्टिप्रवाहभेदः -९)
२. क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते। भागवत ८/२२/१०

श्लोक- **वामांशसंभावनां तु भजनानन्दलब्धये ।**
विसृष्टानां ततोऽन्येषां नान्या साधनपद्धतिः ॥५३॥

भावार्थ- पुष्टिजीव प्रभु की आनन्दमयी काया के वाम अंग से प्रकट हुए हैं। उन्हें प्रभु ने जगत् में भजनानन्द का दान करने के लिए ही प्रकट किया है। इस विशेष

प्रवीणजी माँगीलालजी गर्ग (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

हेतु के लिए भूतल पर प्रकट हुए पुष्टि जीवों के लिए प्रभु की शरणागति और सेवा के अतिरिक्त जीवन की सार्थकता का अन्य कोई उपाय या साधना नहीं है ॥५३॥

लोक -वेद में स्थिर बुद्धि का त्याग प्रभु-कृपा से ही

श्लोक- **यस्यायमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः ।**
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥५४॥

भावार्थ-जिनकी आत्मा के रूप में भावना की जाती है, ऐसे भगवान् जिस भक्त पर अनुग्रह करते हैं, वह भक्त लोक और वेद में स्थिर रूप से रहनेवाली बुद्धि का त्यागकर देता है ॥५४॥

अन्य पुष्टिजीव को भगवान् के अनुग्रहमार्ग में प्रेरित करना भी प्रभुसेवा

श्लोक- **अनुग्रहो नियोज्योऽतः संग्रहः श्रुतिसंमतेः ।**
महतां समयो मानं महांतोऽत्र हरेः प्रियाः ॥५५॥

भावार्थ-लोक-वेद में आसक्त अन्य दैवी जीवों को भगवान् के अनुग्रहमार्ग में, पुष्टिमार्ग में प्रेरित करना भी वेद-सम्मत परोपकार है। जो भगवान् के प्रिय हैं, वे ही महापुरुष हैं और उन्होने अपने आचरण से इसे प्रमाणित किया है। अतः उसे प्रमाण मानना चाहिए॥५५॥

श्लोक- **अतस्तदनुरोधेन रतिरासो यथा भवेत् ।**
तदर्थं वरणं कार्यं श्रीगोपालमहामनोः ॥५६॥

भावार्थ- श्रीमद् भागवत (३।७।१८) में रतिरास रूप भजनानन्द की सिद्धि बतायी गयी है। उस भजनानन्द की सिद्धि के लिए प्रभु श्रीगोपालकृष्ण का वरण करे, उनके मंत्र का जप-ध्यान-चिन्तन करे अथवा 'रति प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे' इस परिवृढाष्टक स्तोत्र का पाठ करे ॥५६॥

श्लोक- **नायमात्मा प्रवचनैर्न धिया न बहुश्रुतैः ।**
लभ्यते वरणं हित्वा वृत्तं संवृणुते श्रुतेः ॥५७॥

भावार्थ-उपनिषदों में स्पष्टतः निर्देश है कि प्रभु न तो वेद-शास्त्रों के प्रवचन

मोहनलालजी एवं राजेश अग्रवाल (राजेश मेडिकोज, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

से प्राप्त होते हैं, न उनकी प्राप्ति में बुद्धि ही उपयोगी सिद्ध होती है, इतना ही नहीं शास्त्रों को बहुत सुनने से तथा सुनकर शास्त्रों के ज्ञाता हो जाने से भी प्रभु की प्राप्ति नहीं होती किन्तु प्रभु जिस जीव का वरण कर लेते हैं, उसे ही प्राप्त होते हैं ॥५७॥

सन्दर्भ- इस श्लोक में कठ उपनिषद् १।२।२२ तथा मुंडक उपनिषद् ३।२।२४ का उल्लेख किया गया है- 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः ...

भगवद्-वियोग-अग्नि तथा सर्वस्व समर्पण से ही धन्यता

श्लोक- स्मृत्वा स्वीयवियोगाग्निं तापदाहो भवाम्बुधौ ।
ततः सर्वं समर्प्यैव श्रीगोपालमनु श्रयेत् ॥५८॥

भावार्थ-जीव का भगवान् से वियोग हो गया है अतः जीव भगवद्-वियोग की अग्नि का स्मरण करे और उस विरह-ताप या आर्ति की निवृत्ति के लिए प्रभु श्री गोपालकृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पित कर तथा प्रतिक्षण उनके मंत्र का ही रटन कर जीव को उन्हीं का आश्रय लेना चाहिए ॥५८॥

सन्दर्भ- ब्रह्मसंबंधमंत्र में अनन्तकाल से हुए भगवद्-वियोग के ताप-क्लेश का स्मरण कराया जाता है तथा सर्वस्व समर्पण किया जाता है। यहाँ वही सन्दर्भ समझना चाहिए।

श्लोक- इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ।
दारान् सुतान् गृहान्प्राणान्यत् परस्मै निवेदनम् ॥५९॥

भावार्थ- यह श्रीमद् भागवत का (११।३।२८) श्लोक है। भक्त जो भी यज्ञ आदि करता है, जो दान देता है, जो जप-तप-व्रत करता है, उन सभी कर्मों को प्रभु के लिए निवेदन कर दे। इसके साथ ही स्त्री,पुत्र, घर , प्राण आदि जिनमें उसका ममत्व है, वह सब भी प्रभु के चरणों में समर्पित कर दे ॥५९॥

सन्दर्भ - १. यहाँ भी ब्रह्मसंबंध के गद्यमंत्र के अनुरूप सर्वस्व निवेदन का अर्थ ही समझना चाहिए।

२. निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थिति। सिद्धान्तरहस्य-५

श्लोक- इति भागवताद्धर्माच्छिक्ष्यन्भक्त्या तदुत्थया ।
नारायणपरो मायामंजस्तरति दुस्तराम् ॥६०॥

श्यामलाल विट्ठलदास गोयल (गोयल ब्रदर्स, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

भावार्थ-इस प्रकार भागवत धर्म (भगवद् भक्तों के धर्म) को जानकर, समझकर, पालनकर उससे जो सुदृढ भक्ति उत्पन्न हो, उस भक्ति से प्रभु श्रीहरि के परायण होने से भक्त कठिनाई से पार होने वाली माया को भी पार कर जाता है॥६०॥

सन्दर्भ- दैवी ह्येषागुणमयी मम माया दुरत्यया । मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ भगवद् गीता ७/१४

श्लोक- एवं योगीश्वरोक्तेन भक्तिमार्गेण यो यजेत् ।
स एवातीत्य कलिजान्दोषान् गच्छेत् परं पदम् ॥६१॥

भावार्थ-श्रीमद् भागवत के एकादश स्कन्ध में योगीश्वरों ने उपर्युक्त भक्तिमार्गीय प्रणाली से भगवान् का भजन, सेवा करने का उपदेश दिया है । इस प्रकार भजन करने से जीव कलि के समस्त दोषों को पार कर परम पद को, प्रभु को, उनके धाम को प्राप्त कर लेता है॥६१॥

सन्दर्भ- ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः । सर्वदोषनिवृत्तिर्हि.. । सिद्धान्त रहस्य- २

दुःसंग का त्याग

श्लोक- नावैष्णवैः सह वसेन् न तैः संसर्गमाचरेत् ।
प्रसंगेषु हरिं ध्यायेत् .....

भावार्थ-वैष्णव को दुःसंग से बचना चाहिए। उसे न अवैष्णवों के साथ रहना चाहिए और न उनसे घनिष्ट संग ही रखना चाहिए। यदि कभी ऐसा प्रसंग हो भी जाए तो ऐसे समय प्रभु का सतत ध्यान करना चाहिए॥६२॥

सन्दर्भ- तजौ मन हरि-विमुखन को संग। जाके संग ते कुबुधि उपजत है होत भजन में भंग।
-सूरदास

भगवत्-सेवा-सम्बन्धी शुद्धता

.....स्नायात्कर्मणि मन्त्रतः ॥६२॥

श्लोक- देहशुद्धिः सदा कार्या करशुद्धिर्विशेषतः ।
स्वपात्रं भगवत्पात्रं स्नानपात्रं न मेलयेत् ॥६३॥

भावार्थ-भगवत्सेवा करने के पूर्व स्नान करे। स्नान मंत्र के उच्चारण के साथ किया जाना चाहिए। भगवत्सेवा में देह की शुद्धि होना सदैव आवश्यक है। सेवा के समय जब-जब आवश्यक हो हाथों की शुद्धि का विशेष ध्यान रखना चाहिए। यह सावधानी रखनी चाहिए कि अपने उपयोग में आने वाले पात्र और भगवान् की सेवा में उपयोगी पात्र, भगवान् के स्नान के पात्र आदि भी परस्पर मिल न जावें। भगवान् की सेवा में उपयोग में आने वाले सभी पात्र अलग ही होने चाहिए॥६२-६३॥

श्लोक- एवं वस्त्रेपि विज्ञेयं शुद्धाशुद्धिं स्ववैष्णवैः।
गोपयेत् स्वागमाचारं पाकसेवां हरेरपि ॥६४॥

भावार्थ-इसी प्रकार वस्त्रों तथा अन्य वस्तुओं के विषय में जानना चाहिए। यदि शुद्धि के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी न हो तो स्वमार्गीय वैष्णवों से समझ लेना चाहिए। स्वमार्गीय अन्तरंग आचार तथा श्रीठाकुरजी की भोग-सामग्री अन्य लोगों से गुप्त रखनी चाहिए॥६४॥

श्लोक- सौवर्णैः राजसैस्ताम्रैः पात्रैर्व्यवहरेत्परैः।
पाके स्वीयान् सतीर्थ्यांश्च सवर्णान् संनियोजयेत् ॥६५॥

भावार्थ-श्रीठाकुरजी की सेवा में उत्तम पात्र उपयोग में लेने चाहिए। सेवा में सोने के , चाँदी के या तांबे के पात्रों का उपयोग करना चाहिए। रसोई में अपने परिवार जन, स्वमार्गीय गुरु के सेवक तथा अपने सजातीय स्वजनों को ही लगावे। अन्य किसी को पाक-सामग्री बनाने में सम्मिलित न करे॥६५॥

सन्दर्भ - असमर्पित-वस्तूनां तस्माद् वर्जनमाचरेत्। निवेदिभिः समप्यैव सर्वं कुर्याद् इति स्थितिः॥ न मतं देवदेवस्य सामिभुक्त-समर्पणम्। तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम्॥

सिद्धान्तरहस्यम्

श्लोक- समर्प्यैव शुचिः पूर्वं हरयेऽन्यत्र योजयेत्।
द्विमुखं तु शुचिपात्रमंशुकं लोमजं शुचिः ॥६६॥

भावार्थ-प्रभु उत्तमोत्तम वस्तु के भोक्ता हैं। उन्हें शुद्ध वस्तु ही समर्पित करे।

गिरिराज लक्ष्मीनारायणजी अग्रवाल (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

पहले प्रत्येक वस्तु प्रभु को समर्पित करे। बाद में ही अन्य कार्य में वस्तु का उपयोग करे। श्रीठाकुरजी के स्नान-पान-प्रक्षालन आदि के लिए दो मुँहवाले पात्र (झारी) का उपयोग करे क्योंकि दो मुँह वाला पात्र पवित्र माना जाता है ॥६६॥

श्लोक- **कार्पासमाहतं शुद्धं नवकौसुंभयुक् शुचिः ।**
विप्रैर्व्यवहृतं तीर्थमारामं च गृहं शुचिः ॥६७॥

भावार्थ- वस्त्रों की दृष्टि से विचार करें तो ऊनी वस्त्र शुद्ध माने जाते हैं। सूती वस्त्र आदि धोया हुआ हो तो शुद्ध होता है। नवीन वस्त्र तथा रंगा हुआ नवीन वस्त्र शुद्ध होता है।

जिस स्थान से ब्राह्मण जल लेते हैं, वहाँ का जल शुद्ध माना जाता है। स्थान की दृष्टि से बगीचे में निर्मित स्थान तथा घर शुद्ध होता है ॥६७॥

अन्याश्रय न करें किन्तु अन्य देवों का अपमान भी न करें

श्लोक- **नान्यदेवं व्रजेन्नैव प्रसक्तो ह्यपमानयेत् ।**
तीर्थेषु तीर्थदेवानां भूदेवानां समर्चनम् ॥६८॥

भावार्थ- अन्य देवों के देवालय में न जावे, यदि किसी प्रसंगवश जाने का अवसर मिले तो उन देवों का अपमान न करे। तीर्थों पर जावे तो तीर्थदेवता का पूजन करे। तीर्थ पुरोहित तथा ब्राह्मणों का सत्कार करे ॥६८॥

सन्दर्भ-अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च। प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि तथान्यत्रविवर्जयेत् ॥
विवेकधैर्याश्रय-१४

कलियुग में संन्यास शक्य नहीं, गृहस्थाश्रम उचित

श्लोक- **संन्यासश्चाग्निहोत्रं च कलौ नैव यथाविधि ।**
संदिग्धधर्मसेवापि क्लेशायैवाल्पमेधसाम् ॥६९॥
समर्थस्तु तयोः कुर्याद्विद्वान् स्मार्ताग्निधारणम् ।
न्यासाश्रमात्पतन्मर्त्य आरूढपतितोऽगतिः ॥७०॥
यद्यप्येवं हि गार्हस्थ्यं वर्णधर्मेण दुष्करम् ।
तथाप्यायातपतितं तद् बिभृयाद् देहयात्रया ॥७१॥

गोपालजी श्री ज्वेलर्स (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

न गार्हस्थ्यं विना देहयात्राधर्मोपि सिध्यति ।
अतस्तस्मिंस्थितस्यैव यत्किंचित्सिद्धिसंभवः ॥७२॥

आश्रमो द्विविधः कौर्मे तत्रोदासीनको गृही ।
आद्येऽपि कश्चांत्ये वैष्णवोधिऽकृतस्ततः ॥७३॥

भावार्थ-कलिकाल में संन्यास और अग्निहोत्र शास्त्रीय विधि से नहीं हो पाते हैं। अल्पबुद्धिवाले मनुष्य और जिसे धर्म के यथाविधि आचरण में सन्देह हो, के द्वारा किये जाने वाले धर्म-कार्य यथाविधि नहीं हो पाते हैं। इस कारण उनके लिए धर्म-कार्य भी क्लेश के कारण बन जाते हैं॥६९॥

ऐसी स्थिति में यदि व्यक्ति समर्थ हो और विद्वान हो तो संन्यास और अग्निहोत्र के स्थान पर स्मार्त्त अग्नि को धारण करे। यदि पात्रता के बिना ही कोई संन्यास लेता है तो वह संन्यास आश्रम से पतित हो जाता है। ऐसे आरूढपतित व्यक्ति की अगति होती है। वह संन्यास आश्रम के फल को प्राप्त नहीं कर पाता है॥७०॥

यद्यपि कलिकाल में गृहस्थ आश्रम के वर्ण-आश्रम-धर्म का निर्वाह करना भी कठिन है, फिर भी गृहस्थ आश्रम तो आ ही पड़ा है। इससे तो बच ही नहीं सकते इसलिए गृहस्थ आश्रम में रहकर जैसे भी वर्णाश्रम धर्म का निर्वाह हो सके, वैसा करते हुए देह-यात्रा करता रहे, जीवन व्यतीत करे॥ ७१ ॥

गृहस्थ आश्रम के बिना न तो पितृकर्म हो सकते हैं और न सन्तान-परम्परा के बिना सृष्टि का क्रम ही चल सकता है। गृहस्थाश्रम के बिना देह यात्रा के धर्म-कर्म भी नहीं हो सकते। अतः अन्य आश्रम धर्म तो इस समय मुश्किल हो गये हैं, ऐसी स्थिति में गृहस्थ-जीवन में रहकर ही कुछ किया जा सकता है, केवल इसी से कुछ संभावना शेष रही है॥ ७२ ॥

कूर्म पुराण में ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम आदि सभी आश्रमों के दो-दो प्रकार बताये गये हैं। तदनुसार गृहस्थ में भी 'उदासीन' और 'साधक' ये दो प्रकार बताये हैं। जो गृहस्थ अपने परिवार का भरण-पोषण करते हुए जीवनभर पारिवारिक

भगवानदासजी फकीरचन्दजी गुप्ता (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

दायित्वों का ही निर्वाह करता रहता है, वह 'साधक' कहा जाता है, जो गृहस्थ देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण आदि चुका कर अर्थात् इस दायित्वों को निबाहने के बाद घर-परिवार-धन-व्यापार-व्यवसाय आदि को छोड़कर मोक्ष की इच्छा से एकाकी विचरण करता है, वह 'उदासी' कहलाता है॥ ७३॥

सन्दर्भ- 'उदासीन' 'साधक'श्च गृहस्थो द्विविधो भवेत्। कुटुम्बभरणायत्तः साधकोऽसौ गृही भवेत्॥ ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम्। एकाकी यस्तु विचरेद् उदासीनः स मौक्षिकः॥ कूर्मपुराण ७८-७९

द्विज के अलावा अन्य वैष्णवों के कर्तव्य

श्लोक - शूद्रस्तु हिंस्रकार्येण निषिद्धस्याशनेन च।
निवृत्तोऽसौ भजेत्कृष्णं महद्भिरनुकंपितः॥७४॥

सहितं हरिभक्तानां ब्राह्मणानां चरेद् गवाम्।
पादसेवा च महतां यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः॥७५॥

दानं व्रतं पैतृकं च शौचं शांतिमथाश्रयेत्।
हरिमेव भजेत्प्रेम्णा तेन सिध्यति सत्वरम्॥७६॥

न वेदश्रवणं कार्यं स्पर्धासूर्यादिनान्यतः।
न्यग्भावेन प्रपन्नोऽसौ भवेद्दासो हरेर्गुरोः॥७७॥

भावार्थ- जो द्विजों के अतिरिक्त वैष्णव हैं, वे भी ऐसी आजीविका के रूप में जीवन-निर्वाह के लिए ऐसा कार्य न करे, जिससे जीवों की हिंसा होती हो तथा शास्त्रों में और वैष्णव समाज में जिन पदार्थों को खाना-पीना निषिद्ध है, उनसे बचे। महापुरुषों (गुरु तथा भगवदीयों) की कृपा प्राप्त करके भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करे, सेवा करे॥७४॥

उसे ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे भगवान् के प्रिय भक्तों, भगवदीयों का, ब्राह्मणों का और गायों का हित हो। महापुरुषों, भगवदीयों की सेवा करे। इस प्रकार के आचरण से श्रीहरि प्रसन्न होते हैं॥७५॥

श्रीमती लक्ष्मीबाई स्व. छगनलालजी अग्रवाल घाटवाला (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

प्रत्येक वैष्णव को दान, व्रत (चार जयन्ती व्रत तथा एकादशी), श्राद्ध आदि पितृकर्म अवश्य करने चाहिए। शुद्धि-पवित्रता रखना चाहिए। मन में शान्ति रखना चाहिए। प्रेमपूर्वक, भक्तिभाव से प्रभु श्रीकृष्ण का भजन-सेवा करना चाहिए। इस प्रकार करने से प्रभु की कृपा शीघ्र प्राप्त होती है ॥७६॥

अन्यों से स्पर्धा करते हुए जिन्हें अधिकार न हो वे वेद का श्रवण न करें। वे दैन्यपूर्वक गुरु एवं प्रभु श्रीहरि के शरणागत होकर तथा दास बनकर रहें॥७७॥

स्त्रियों के सम्बन्ध में निर्देश

श्लोक- सधवा भर्तृभावेन विधवा पुत्रभावतः ।
श्रीकृष्णं संश्रयेत्साध्वी जितचित्तेन्द्रिया शुचिः ॥७८॥

भावार्थ- प्रत्येक भक्त महिला को अपनी इन्द्रियाँ तथा मन पर नियंत्रण रखना चाहिए तथा शरीर, आचरण और मन पवित्र रखना चाहिए। स्वभाव साधु के समान सौम्य-शान्त बनाना चाहिए। यदि स्त्री सधवा हो, सौभाग्यवती हो तो उसे भगवान् की सेवा पतिभाव से करनी चाहिए और यदि स्त्री विधवा है तो उसे पुत्रभाव से प्रभु का आश्रय लेना चाहिए तथा पुत्रभाव से सेवा करनी चाहिए ॥७८॥

श्लोक- पतिपुत्रादिबंधूनामानुकूल्येऽस्य सेवनम् ।
तदभावे भजेद् भक्त्या कीर्तनैः श्रवणैः स्मृतैः ॥७९॥

भावार्थ- यदि पति, पुत्र और परिजन अनुकूल हों तो अपने घर में ठाकुरजी को पधराकर प्रेमपूर्वक परिवार के साथ सेवा करनी चाहिए। यदि पति-पुत्र-परिवार प्रभु-सेवा के अनुकूल न हो तो भी प्रभु के नाम-गुण-कर्म-लीला आदि का भक्तिभाव से, प्रेमपूर्वक श्रवण करे, स्मरण करे और कीर्तन करे ॥७९॥

श्लोक- तेषामेव तथात्वे तु परिचर्या समंदिरात् ।
हरेर्गुरोः संभवति ह्यस्वतंत्राः स्त्रियो यतः ॥८०॥

भावार्थ- समाज में प्रायः स्त्रियों को अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की

सागर नटवरलालजी गुप्ता (लिबर्टी स्टोर, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

स्वतंत्रता नहीं है इसलिए यदि पति-पुत्र-परिवार भगवान् की सेवा करने के अनुकूल न हो तो मन्दिर में जाकर, जो संभव हो वह सेवा करे अथवा गुरु-गृह में जाकर, जो और जैसी संभव हो, गुरु की परचारगी करे ॥८०॥

श्लोक- स्वतंत्रतायां दोषो हि स्त्रीणां सर्वत्र जायते ।
अतस्तया तथा भूत्वा हरिः सेव्यस्तदिच्छया ॥८१॥

भावार्थ-यदि पति-पुत्र परिवार कीं इच्छा के विरुद्ध स्त्री स्वतंत्र निर्णय लेकर घर में प्रभु-सेवा करने पर अड़ी रहती है तो समाज में इसे दोष माना जाकर निन्दा होती है, इससे स्वयं के और परिवारजन के चित्त में क्लेश होता है, आनंदरूप प्रभु *को क्लेश पसन्द नहीं है इसलिए परिवार की इच्छा के विरुद्ध जाकर सेवा न करे।* यही सोचे कि प्रभु की इच्छा ऐसी ही है। प्रतिकूल स्थिति में भी प्रभु के प्रति पूर्ण प्रेम रखते हुए श्रवण-स्मरण-कीर्तन रूप सेवा करें या अन्तर्मन में प्रभु का स्मरण रूप सेवा करे। हर स्थिति में प्रभु की सेवा, प्रकट या आन्तर रूप से, अवश्य करनी चाहिए।

श्लोक- चित्रमात्रेऽपि सेवा स्यात्प्रतिबंधे गुरोर्गिरा ।
छलेनापि भजन्कृष्णं मुच्यते गोपिकादिवत् ॥८२॥

भावार्थ-यदि स्वरूप-सेवा की अनुकूलता न हो तो गुरु की आज्ञा प्राप्त करके चित्र-सेवा भी की जा सकती है। यदि परिवार की इच्छा न हो तो भी यदि उसकी चिन्ता न करते हुए गुप्त रूप से, मन ही मन भगवत्सेवा की जावे तो भी प्रभु ऐसे भक्त का उद्धार कर देते हैं। जैसे कृष्णावतार के समय कर्मकांडी ब्राह्मणों की अनुमति न मिलने पर भी उनकी पत्नियों ने प्रभु को सामग्री समर्पित की थी तो प्रभु ने उनका उद्धार किया था ॥८२॥

श्लोक- पुरुषापेक्षया स्त्रीणां हृदयं मृदु दृश्यते ।
अतस्तदनुरागोऽत्र सद्य एवाभिषज्यते ॥८३॥

भावार्थ-पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का हृदय कोमल होता है। इसलिए प्रभु में

पुरुषोत्तम गट्टूलालजी अग्रवाल (सौरभ ज्वेलर्स, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

उनका अनुराग पुरुषों की तुलना में शीघ्र होता है ॥८३॥

श्लोक- कामदोषो हि नारीणां कनकानां यथा रजः ।
तज्जये विजितः कृष्णः कृष्णः स्त्रीणां प्रियो यतः ॥८४॥

भावार्थ-जैसे सोना उत्तम धातु है किन्तु उसमें रज दोष होता है, उसी प्रकार स्त्रियों में काम रूपी दोष होता है। यदि वे कामभाव पर विजय पा लें, उनमें निर्गुण भाव आ जावे तो प्रभु कृपापूर्वक उनके अधीन हो जाते हैं। स्त्रियों को श्रीकृष्ण विशेष प्रिय होते हैं ॥८४॥

श्लोक- उदकी च प्रसूता स्त्री अशुचिश्च तथा पुमान् ।
दर्शनस्पर्शनादीनि सेव्यमूर्तेर्विवर्जयेत् ॥८५॥

भावार्थ-मासिक धर्म वाली, प्रसूता अथवा सूतक वाली स्त्रियाँ तथा सूतक की स्थिति में पुरुष भी प्रभु के दर्शन-स्पर्श आदि न करे ॥८५॥

सेव्य भगवत् स्वरूप कैसा हो ?

श्लोक- चित्रमूर्तिरविज्ञानां पराधीनात्मनामपि ।
शुचिश्लक्ष्णामिपीच्यां च गुरुदत्तां भजेद्बुधैः ॥८६॥

तीर्थतोयैर्निजैर्मन्त्रैः संस्कृतां सुमनोहराम् ।
लघ्वीमेव भजेन्मूर्तिं यथालब्धोपचारकैः ॥८७॥

भावार्थ-भगवत्-स्वरूप गुरु के द्वारा सेवा के लिए पधराया गया हो। भगवान् का सेव्य स्वरूप पवित्र हो, सुकुमार हो तथा अति सुन्दर हो। यह बहुत मनोहर स्वरूप बहुत बड़ा न हो अपितु छोटा होना चाहिए। इस सेव्य स्वरूप का तीर्थ (जैसे यमुनाजी) के जल से तथा अपने सम्प्रदाय के मंत्र से संस्कार किया जाना चाहिए। भगवत्-स्वरूप की सेवा सहजता से उपलब्ध वस्तुओं से करना चाहिए।

जिन्हें प्रभु की सेवा-विधि का पूर्ण ज्ञान न हो या जो पराधीन हों (जैसे बहुएँ हों या नौकरी, व्यवसाय आदि के कारण जो अधिक समय न निकाल सकते हों), जिन्हें भगवत्-स्वरूप की सेवा करने की अनुकूलता न हो, उनके लिए चित्र जी की

डॉ. उमेश मित्तल (मित्तल हॉस्पिटल, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

सेवा करना ही उचित है ॥८७॥

श्लोक- नात्र प्राणप्रतिष्ठादि व्यापकत्वादजीवतः ।
स्थानशुद्ध्यर्थमेवैतच्छब्दार्थमपि सद्गुरोः ॥८८॥

भावार्थ- पुष्टिमार्ग में सेव्य स्वरूप की प्राण-प्रतिष्ठा करने का विधान नहीं है। क्योंकि परब्रह्म श्रीकृष्ण तो सर्वव्यापक हैं, वे जीवात्मा के समान प्राकृत नहीं हैं कि प्राणों की प्रतिष्ठा होने पर ही उनका स्वरूप में प्रवेश होता हो। तीर्थ-जल और मंत्र आदि से शुद्धि और संस्कार करने की जो बात कही गई है उसका तात्पर्य केवल यही है कि जिस धातु से स्वरूप का निर्माण हुआ है उसकी शुद्धि हो जाए तथा सद्गुरु के द्वारा मंत्र से पुष्ट करने का विधान है उसका भी उद्देश्य यह है कि हमें उस स्वरूप की सेवा करने की गुरुदेव के द्वारा आज्ञा प्राप्त हो जाए ॥८८॥

श्लोक- अशुचिस्पर्शने तस्यास्तथापंचामृतैरपि ।
होमैर्दानेन संशोध्या वैदिकेन निजात्मवत् ॥८९॥

भावार्थ- यदि कभी किसी कारण से सेव्य स्वरूप को अपवित्र का स्पर्श हो जाए तो जैसे हम स्नान आदि करके शुद्ध होते हैं वैसे ही सेव्य जिस स्वरूप को पंचामृत से स्नान कराना चाहिए तथा शुद्धि के लिए होम, दान तथा वैदिक विधान से शुद्धि कर्म करना चाहिए ॥८९॥

श्लोक- गुरुदत्तां स्वयंलब्धां भक्तैरपि सुपूजिताम् ।
व्यङ्गाङ्गीमपि सेवेत यदि भावो न बाध्यते ॥९०॥

भावार्थ- इस प्रकार गुरु के द्वारा दिये गये स्वरूप या स्वयं के द्वारा लाये गये स्वरूप की अथवा किसी अन्य भवदीय के द्वारा जिनकी सेवा की जाती रही हो, उनकी सेवा करना चाहिए। यदि भाव में कोई बाधा न पड़ती हो तो स्वरूप का कोई अंग खंडित हो गया तो उस खंडित स्वरूप की भी भावपूर्वक सेवा की जा सकती है।

सन्दर्भ-तदभावे स्वयं वाऽपि मूर्तिं कृत्वा हरेः क्वचित् परिचर्यां सदा कुर्यात्। सर्वनिर्णय- २२८

अंकित वीडियो (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

नित्य सेवा कैसे की जावे ?

श्लोक- प्रातरारभ्य मध्याह्नावधिश्चैवापराह्णके ।
तत्तल्लीलानुभावेन भजेत्स्वगुरुसंमताम् ॥९१॥

भावार्थ- वैष्णव को प्रात:काल से आरंभ करके मध्याह्नकाल तक तथा बाद में दोपहर बाद (अपराह्न) में गुरु की आज्ञा के अनुसार भगवत्सेवा करनी चाहिए। इस बात का ध्यान रखे कि जिस समय की सेवा की जा रही है, उस समय प्रभु द्वारा की गयी लीला की भावना करते हुए सेवा होनी चाहिए॥९१॥

श्लोक- वस्त्रैश्च भूषणैर्गन्धैर्नैवेद्यैर्व्यञ्जनैः शुभैः ।
देशकालविभूतीनामनुसारेण सेवनम् ॥९२॥

भावार्थ- प्रभु की सेवा देश और काल (समय, ऋतु) के अनुसार होनी चाहिए। अपनी सामर्थ्य के अनुसार सहजता से उपलब्ध वस्तुओं से श्री ठाकुरजी की सेवा करनी चाहिए। देश-काल - सामर्थ्य के अनुसार ही उत्तम वस्त्र, आभूषण, सुगंधित पदार्थ और भोग-सामग्री प्रभु को समर्पित कर प्रभु श्रीकृष्ण की सेवा करना चाहिए॥९३॥

श्लोक- प्रेम्णा परिचरेत्साधुर्यावज्जीवं समाहितः ।
तेनास्य भावनासिद्धिः यया स्यात्कृतकृत्यता ॥९३॥

भावार्थ-सत्पुरुष को जीवनभर एकनिष्ठ होकर, तन्मय होकर प्रेमपूर्वक प्रभु की सेवा करनी चाहिए। इस प्रकार सेवा करने से भक्तिभावना सिद्ध, परिपक्व हो जाती है, जिससे भक्त कृतकृत्य हो जाता है॥९३॥

प्रात:काल जागरण, भगवत्स्मरण, स्नान, शौच अदि के नियम

श्लोक- प्रातः पाश्चात्ययामेऽसौ समुत्थाय शुचिर्धिया ।
स्मरेत्भगवतो लीलां गायत्तस्य गुणान्गिरा ॥९४॥

भावार्थ-प्रात:काल रात्रि के अन्तिम प्रहर में सूर्योदय के पूर्व जाग जाए। शुद्ध होकर जागरूक चेतना के साथ भगवान् की लीला का स्मरण करे तथा वाणी

से प्रभु के गुणों का गान करें। (प्रात: स्मरण के श्लोकों, भागवत की स्तुतियों, आचार्यों तथा भगवदीयों की रचनाओं के माध्यम से प्रभु के गुणों का गान हो सकता है।)

श्लोक- प्रातः कृत्यं ततः कार्यं बहिर्गत्वा यथोदितम् ।
मुखशुद्धिस्ततो नित्यं सौगंधाभ्यञ्जनं भवेत् ॥९५॥

भावार्थ-इसके बाद प्रात:कृत्य, शौच, मुख-शुद्धि आदि यथाविधि करें तथा प्रतिदिन सुगन्धित तैल से मालिश करे ॥ ९५ ॥

श्लोक- मलस्नानं गृहे कार्यं तप्तोदकपरोदकैः ।
तस्योपरि श्रीयमुनाजलैः स्नानं स्तवनैश्च वा ॥९६॥
तीर्थस्थाने मलस्नानं कृत्वा तीर्थेभिमज्जनम् ।

भावार्थ-फिर समोये हुए जल से पहले मल-स्नान करे फिर यदि उपलब्ध हो तो यमुना-जल से स्नान करे अथवा सामान्य जल से स्तवन, स्नान-मंत्र आदि का उच्चारण करते हुए स्नान करे। तीर्थ में जब भी स्नान करने का अवसर मिले तो पहले अलग से मल-स्नान करना चाहिए तथा बाद में ही तीर्थ-स्नान करना चाहिए॥९६॥

वस्त्र धारण करने, तिलक-मुद्रा धारण करने, चरणामृत-पान की विधि

श्लोक- ततस्तु धारणं शुद्धकौशेयांबरयुग्मयोः ॥९७॥
पादुकाभिर्गृहे यानं स्पर्शनं नैव कस्यचित् ।

भावार्थ-स्नान के बाद शुद्ध रेशमी दो वस्त्र धारण करे तथा पादुका पहनकर घर में आवे। स्नान के बाद, भगवान् की सेवा के पूर्व किसी का स्पर्श न करे। पादुका पहनकर ही चले॥९७-९८॥

श्लोक- कुंकुमस्योर्ध्वपुंड्राणि द्वादशांगेषु नामभिः ॥९८॥
शंखचक्रादिमुद्राश्च गोपीचंदनमृत्स्नया ।

भावार्थ-शरीर के बारह अंगों पर भगवान् के नामों का उच्चारण करते हुए

कुंकुम के ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करे तथा गोपीचन्दन से शंख-चक्र आदि मुद्राएँ अंकित करे। ऐसा करने से विभिन्न इन्द्रियों, अंगों की भगवत्सेवा के योग्य शुद्धि होती है॥९८-९९॥

श्लोक- चरणामृतपानं च लेपश्चापि विशुद्धये ॥९९॥
ततस्तु तुलसीमालां धृत्वा संध्यां समाचरेत्।

भावार्थ-इसके बाद प्रभु के चरणामृत का पान करे तथा शरीर में उसका लेपन करे। तुलसी की माला धारण किये हुए रहे। यदि वैष्णव यज्ञोपवीतधारी है तो उसे स्नान के बाद नित्य संध्या करनी चाहिए॥ ९९-१०० ॥

भगवत्-सेवा का शुभारंभ कैसे करें ?

श्लोक- परिचर्या हरेः कार्या परिवारजनैः सह ॥१००॥
गत्वा हरिपदं पद्भ्यां स्तुत्वा द्वारं प्रणम्य च।
प्रविश्य मार्जनैर्लेपैः पात्राणां शोधनं चरेत् ॥१०१॥

भावार्थ-श्री ठाकुरजी की सेवा अपने परिवार के लोगों के साथ मिलकर करनी चाहिए॥१००॥

जहाँ ठाकुरजी विराजते हैं वहाँ नंगे पैरों से जावे, पादुका बाहर उतार दे। वहाँ पहुँचकर सर्वप्रथम श्री ठाकुरजी के विराजने के स्थान, भगवन्-मन्दिर की स्तुति करे और प्रणाम करे। बाद में मन्दिर में प्रवेश करके मन्दिर को सोहनी-सेवा करे फिर लीपे या पोता लगावे। बाद में पात्रों को माँज-धोकर शुद्ध करे॥१००-१०१॥

प्रभु को जगाना

श्लोक- संभृत्य सर्वसंभारं प्रातराशादिपूर्वकम्।
प्रबोध्य श्रीहरिं 'प्रेम्णा' मुखशुध्यंशुकादिभिः ॥१०२॥
अलंकृत्य ततः सिंहासने समुपवेशयेत्।

भावार्थ-मंगल भोग की सामग्री तैयार रखे तथा झारी आदि सभी वस्तुएँ सजाकर रख दे फिर श्री ठाकुरजी को प्रेम से जगावे। उसके बाद श्रीजी को आचमन

श्रीमती ललिताबाई जगदीशचन्द्रजी सुगन्धी, राजेश पुस्तक भंडार, (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

करावे, मुख-वस्त्र करे। इसके बाद अस्त-व्यस्त हो गये वस्त्र-अलंकार आदि अच्छी तरह से धराकर श्री ठाकुरजी को सिंहासन पर पधरावे ॥ १०२-१०३ ॥

मंगल भोग, आरती, स्नान की विधि

श्लोक- हैयंगवीनपक्वान्नैः तांबूलैः सुजलैर्यजेत् ॥१०३॥
ततो नीराजनं कार्यं मंगलं गीतवाद्यकैः ।

भावार्थ-प्रभु को सिंहासन पर विराजित करके ताज मक्खन, विविध पक्वान्न ठोर-मठरी आदि मंगल भोग में धरे। सुमधुर जल समर्पित करे। समय होने पर भोग सरावे। उसके बाद श्रीजी को पान का बीड़ा समर्पित करे। ऋतु एवं समय के अनुसार मंगला के पदों का कीर्तन करे। फिर मंगल आरती करे॥ १०३-१०४ ॥

श्लोक- अभ्यंगोन्मर्दनैः स्नानं गृहस्नानविधानतः ॥१०४॥
स्तुत्वा कालिंदजां स्नाते कुर्यात्संप्रौंछनांशुकम् ।

भावार्थ-उसके बाद सुगन्धित तेल मलकर (आँवला, चन्दन, केशर आदि का) उबटन करे। फिर श्री यमुनाजी की स्तुति, यमुनाष्टक के पाठ से यमुना की स्तुति करके श्री ठाकुरजी को (सुहाते जल से) स्नान करावे। बाद में प्रभु के श्रीअंग को सूती वस्त्र से पोंछे, अंग वस्त्र करे॥१०४-१०५॥

शृंगार समय की सेवा की विधि

श्लोक- शृंगारं रंजितैर्वस्त्रैश्चित्रैराभरणैरपि ॥१०५॥

मायूरमुकुटै रम्यैर्वेणुवेत्रैः सुमाल्यकैः ।
वितानैः प्रसरैः शुभ्रैः प्रतिसीरैर्नवैर्नवैः ॥१०६॥

जलक्रीडोपस्करैश्च तांबूलामोददर्पणैः ।
व्यञ्जनैर्जलभृंगारैर्देशकालानुसारिभिः ॥१०७॥

अलंकृत्यैव सप्रेम स्वीयान्भक्तान्प्रदर्शयेत् ।
तौर्यत्रिकेन तत्रापि धूपदीपादिनार्तिकम् ॥१०८॥

अरविन्द गुप्ता (जीवन बीमा निगम, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

भावार्थ-इसके बाद ऋतु-काल एवं देश के अनुसार रंगे हुए वस्त्र, विविध प्रकार के आभरण-आभूषण, सुंदर मोरपंख का मुकुट, वेणु, वेत्र (छड़ी), सुन्दर माला से प्रभु का प्रेमपूर्वक शृंगार करे। उज्ज्वल चन्दोवा, बिछौना और पिछवाई लगावे। खिलौने, जलक्रीड़ा की वस्तुएँ आदि सजावे। प्रेमपूर्वक प्रभु को अलंकृत करे। इसके पश्चात् नृत्य-गीत-वाद्य, वाद्ययंत्रों के साथ कीर्तन-नृत्य आदि करके प्रभु को रिझावे। यदि उस समय कोई निजजन, आत्मीय भक्त उपस्थित हों तो उन्हें श्री ठाकुरजी के दर्शन करावे। धूप-दीप-आरती करे।

राजभोग-समर्पण तथा अवशिष्ट जप आदि

श्लोक- ततो नानाविधैः शुद्धैश्चतुर्विधसुभोजनैः ।
संभृतं स्वर्णपात्रं तु हरेरग्रे निवेदयेत् ॥१०९॥
तुलसीशंखतोयेन गायत्र्यास्मिन्निधाय च ।
एतत्समर्पितं देव भक्तया मे प्रतिगृह्यताम् ॥११०॥
राजभोगं समर्प्यैवं बहिर्गोग्रासमाचरेत् ।
ततोवशिष्टं जाप्यादि माध्याह्निकमिहाचरेत् ॥१११॥

भावार्थ-इसके बाद विविध प्रकार के लेह्य, चोष्य, पेय और खाद्य ऐसे चारों प्रकार के शुद्ध, उत्तम एवं स्वादिष्ट पदार्थों को सोने के (उत्तम) पात्रों में भरकर श्री ठाकुरजी के सम्मुख आरोगने के लिए पधरावे। भोग के पात्रों में तुलसी पधराकर गायत्री मंत्र (यदि यज्ञोपवीत हो तो) के उच्चारण के साथ शंख के जल को छिड़कते हुए प्रभु से निवेदन करे-' हे प्रभो ! मेरे द्वारा भक्ति भाव से (अत्यन्त प्रेमपूर्वक) समर्पित भोग को स्वीकार कीजिए।' फिर बाहर आकर गोग्रास देवे। यदि मध्याह्न संध्या या जप, पाठ आदि अपूर्ण रहे हों तो इस समय में वह पूर्ण करे॥१११॥

राजभोग आरती और सेवा के अनवसर के कार्य

श्लोक- ततस्त्वाचमनं दत्त्वा तांबूल माल्यजां स्रजम् ।
अपसार्य विशोध्यात्र नैवेद्यं जलमानयेत् ॥११२॥

शंकरलाल परसरामजी अग्रवाल (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

ततो राजविभूतीनामादर्शैश्चामरैर्भजेत् ।
गीताद्युत्सवतो ह्येनं नीराज्य च प्रणम्य च ॥११३॥
हृदि कृत्वा पिधायास्य मंदिरं बहिराव्रजेत् ।
स्रग्गंधादि शिरो धृत्वा प्रणम्यैव गृहं व्रजेत् ॥११४॥
माध्याह्निकं समाप्यैव श्रीमद्भागवतं पठेत् ।
ततो भक्तजनेभ्योऽस्यं प्रसादं शक्तितो भजेत् ॥११५॥
समागतेभ्यो विप्रेभ्यो दीनेभ्यश्च यथायथम् ।
दत्वा स्वीयजनैर्भुक्तिः वैश्वदेवोपि तत्र वै ॥११६॥

भावार्थ-फिर समय होने पर श्रीठाकुरजी को आचमन करावे। फिर पान का बीड़ा समर्पित करे। बाद में पुष्पमाला-पुष्पगुच्छ समर्पित करे। भोग सराकर स्थान को शुद्ध करे। श्रीठाकुरजी के अरोगने की जल की झारी पधरावे ॥११२॥

इसके बाद राजाधिराज श्री ठाकुरजी को दर्पण दिखावे, चँवर ढुलावे तथा गीत-वाद्य आदि के द्वारा खूब आनंद मनावे मानो उत्सव हो। तत्पश्चात् राजभोग-आरती करके प्रभु को प्रणाम करे ॥११३॥

फिर प्रभुजी को अपने हृदय में धारण करके, विराजमान करके भगवन्-मंदिर के द्वार मंगल (बंद) करके बाहर आ जावे। श्रीठाकुरजी की प्रसादी माला, बीड़ा, चंदन आदि को मस्तक पर चढ़ावें फिर श्रीठाकुरजी के विराजने के मंदिर को प्रणाम करके अपने निवास-स्थान में जावे। यदि दोपहर के कर्म जप, पाठ आदि शेष रहे हो तो उन्हें पूर्ण करे। फिर श्रीमद् भागवत का पाठ करे ॥११४॥

पाठ के उपरान्त भक्तजनों को शक्ति के अनुसार महाप्रसाद देवे, भोजन करावे॥११५॥

घर आये हुए ब्राह्मणों को, दीनजनों को यथाशक्ति दान-दक्षिणा, महाप्रसाद आदि देकर महाप्रसाद से वैश्वदेव करे अर्थात् प्राणियों को अन्नदान आदि देवे। इसके बाद परिवारजन, स्वजन के साथ महाप्रसाद लेवे ॥११६॥

डॉ. कैलाशजी महाजन (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्लोक- ततो वार्तां स्वकीयानां बहुपापैरनाकुलाम् ।
यात्रार्थमेव सेवेत नाभिवेशोत्र संचरेत् ॥११७॥
संपन्नवृत्तिर्भक्तानां शास्त्राणि परिभावयेत् ।
सर्वथा वृत्यभावे तु याममात्रं भजेद्धरिम् ॥११८॥
दरिद्रश्चकुटुंबार्तः विद्वान् भागवतं पठेत् ।
अविद्वानस्य सेवायां साहाय्यं श्रवणं च वा ॥११९॥

भावार्थ- महाप्रसाद लेने के बाद परिवारजनों के साथ परिवार, व्यवसाय आदि की चर्चा करे। यह ध्यान रखे कि परिवार में जीवन-व्यवहार संबंधी चर्चा हो तो ऐसी कोई बात न करे जो कि पापमयी आजीविका के सम्बन्ध में हो और जो चित्त को आकुल-व्याकुल बना दे। आजीविका का कार्य कर्तव्य मानकर करे किन्तु उसमें पूरी तरह में डूब न जावे। चित्त प्रभु-चरणों में लगा रहे। सांसारिक अभिनिवेश अर्थात् लगाव प्रधान न हो जाए॥११७॥

यदि आप सम्पन्न हैं तथा व्यवसाय आदि में केवल मार्गदर्शन देना है तो सेवा के अनवसर में शास्त्रों का अवगाहन करे। यदि स्थायी आजीविका का साधन न हो तो वैष्णव एक पहर (तीनघंटे) भगवत्सेवा तन्मय होकर करे, शेष समय में आजीविका के लिए लगावे॥११८॥

यदि कोई वैष्णव अत्यन्त गरीब हो और उस पर पारिवारिक जिम्मेदारियाँ भी अधिक हों, जो पारिवारिक समस्याओं के कारण भगवत्सेवा न कर सकता हो तो पढ़ा-लिखा विद्वान वैष्णव विकल्प रूप में भागवत-पाठ नित्य नियमपूर्वक करता रहे। यदि ऐसा वैष्णव सुशिक्षित न हो तो वह किसी भगवदीय के द्वारा की जाती सेवा में यथाशक्ति सहयोग करे अथवा जब वह भागवत-पाठ करे या भगवद्-गुणगान करे तब उसका श्रवण करे॥११९॥

सन्दर्भ- सर्वथा वृत्तिहीनश्चेद् एकं यामं हरौ नयेत्। पठेच्च नियमं कृत्वा श्रीभागवतमादरात्॥ (सर्वनिर्णय२३२)

डॉ. देवर्षि द्विवेदी (साधना होम्यो क्लीनिक, धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

.म् ।
.११७॥
ात् ।
॥११८॥
[।
वा ॥११९॥

रिवार, व्यवसाय
संबंधी चर्चा हो
हो और जो चित्त
करे किन्तु उसमें
रेक अभिनिवेश

न देना है तो सेवा
ा का साधन न हो
य में आजीविका

जिम्मेदारियाँ भी
कर सकता हो तो
नियमपूर्वक करता
रा की जाती सेवा
भगवद्-गुणगान

श्रीभागवतमादरात्॥

ोपीनाथजी प्रभुचरण

उत्थापन की सेवा का प्रकार

श्लोक- सायंसंध्याथ पुण्ड्राणि धृत्वा तांबुलतो मुखम् ।
संशोध्याचम्य शुद्धोऽसौ प्रभोरुत्थापनं चरेत् ॥१२०॥
कन्दमूलैः फलैर्गव्यैः सुमाल्यैः सुजलैरपि ।
संतोष्य मुरजादीनां संगीतेनापि तोषयेत् ॥१२१॥
गायेद् भक्तकृतैः पद्यैः हृद्यैर्लीलारहस्यकैः ।
ततो नीराजयेन्नाथमायान्तं व्रजमंडले ॥१२२॥

भावार्थ-उत्थापन सेवा का समय होने पर दोपहर बाद आचमन करके की बीड़ी से मुख-शुद्धि करके स्नानोपरांत ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करके सायंकाल सन्ध्या करे। इस प्रकार तन-मन से शुद्ध होकर प्रभु के उत्थापन समय की से करे॥१२०॥

उत्थापन भोग में कन्द, मूल, फल, दूध, दही आदि समर्पित करे। मा धरावे। झारी ताजा जल से भरे। मृदंग आदि वाद्यों, संगीत तथा हृदय के वि भावों से भक्तों द्वारा रचित प्रभु की लीला-रहस्य के पदों के माध्यम से भगवत्ल का गान करे। इसके बाद गौ-चारण करके व्रजमंडल में पधारते हुए प्रभु की आ करे॥१२१-१२२॥

शयनभोग, शयन आरती

श्लोक- सायंकालेपि नैवेद्यं यथाविभवविस्तरः ।
नीराजनं च शयनं यथायोग्यं विभावयेत् ॥१२३॥

भावार्थ-संध्या समय भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार विस्तार से प्रभु को समर्पित करे। बाद में शयन आरती करे। इसके बाद प्रभु को सुखपूर्वक पौढावे॥१२

सोने के पूर्व के कार्य

श्लोक- सायंसंध्याऽऽहुतिश्चापि, कृत्वा भुक्त्वा निवेदितम्
कथयेच्छृणुयाद्वापि लीलां भगवतोऽन्वहम् ॥१२४॥
ततः शयीत शुद्धोऽसौ भावयन्भगवत्पदम् ।
सुतार्थिनी स्वपत्नी चेत् व्रजेतां जेतुमिंद्रियम् ॥१२५

श्रीमती मंजू हरीशजी गोयल (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

इत्येवं यस्य दिवसा यान्ति भक्तस्य भूतले ।
स एव कृतकृत्योस्ति हरिस्तमनुश्लिष्यति ।।१२६।।

भावार्थ- संध्या समय संध्याहोम करे उसके बाद प्रभु को निवेदित भोग का महाप्रसाद भोजन के रूप में ग्रहण करे। इसके बाद दिनभर प्रभु-स्मरण में तन्मय रहने वाला शुद्ध भक्त प्रभु के चरणारविन्द की भावना करते हुए शयन करे।।१२४-१२५।।

यदि पत्नी सन्तान की कामनावाली हो तो अपनी इन्द्रियों के संयम की दृष्टि से तथा पत्नी की कामना की पूर्ति के लिए पत्नी के निकट जाए।।१२५।।

इस प्रकार भूतल पर जिस भक्त के दिन व्यतीत होते हैं, वही वास्तव में कृतकृत्य है। ऐसे भक्त को ही श्रीहरि प्राप्त होते हैं।।१२६।।

ग्रन्थ का उपसंहार

श्लोक- इत्येवं भक्तिशास्त्रेषु यदाचारो निरूपितः ।
तदाचारं भजेदत्र नान्यथा गतिरिष्यते ।।१२७।।

भावार्थ- इस प्रकार भक्ति शास्त्रों में जिस आचार का निरूपण किया गया है, उसी भक्ति-आचार का अनुसरण करना चाहिए। इस प्रकार के आचरण के अलावा पुष्टिमार्गीय भक्त के लिए अन्य कोई गति नहीं है। पुष्टिमार्गीय वैष्णव को इष्ट-सिद्धि, भगवत्-प्राप्ति इसी प्रकार भक्ति शास्त्रों में निरूपित आचार से ही होती है।

इति श्रीमद् भगवद्-वदनावतार-श्रीवल्लभ दीक्षित-तनुज -श्रीगोपीनाथ दीक्षित-विरचित साधन दीपिका का भावानुवाद समाप्त हुआ। ■

भगवल्लीला रस से बढ़कर कोई उपलब्धि नहीं

भक्तिं लब्ध्वा च विशते कृष्णलीलास्वसंशयम् ।
नातः परतरं किञ्चित् प्राप्यम् अस्तीह कर्हिचित् ।।

(श्री गोपीनाथानां पद्यानि-१७)

भक्ति प्राप्त होने पर भक्त का निश्चित रूप से प्रभु श्रीकृष्ण की लीला में प्रवेश हो जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है। इस भगवल्लीला रस से बढ़कर जीवन में कोई भी उपलब्धि नहीं है।।

मधुर इलेक्ट्रिकल्स (धार)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्रीगोपीनाथजीप्रभुचरण-विरचित

नित्यसेवा-विधि श्लोक

प्रात:काल उठकर विधिपूर्वक स्नान करके श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण का स्मरण करे तथा श्री ठाकुरजी के मन्दिर की प्रार्थना करते हुए नमस्कार करे-

"प्रातरुत्थाय सविधानं स्नानं कृत्वा श्रीमदाचार्यान् स्मृत्वा भगवन्मंदिरं प्रार्थयित्वा, नमस्कृत्य मार्जनादिकं कुर्यात्"

श्लोक- भगवद्धाम भगवन् ! नमस्तेऽलङ्करोमि तत् ।
अङ्गीकुरु हरेरर्थे क्षान्त्वा पादोपस्पर्शनम् ॥१॥

भावार्थ - हे भगवद् धाम ! आप में यशोदोत्संगलालित परब्रह्म प्रभु श्रीकृष्ण विराजते हैं अत: आप तो भगवत्-स्वरूप हैं। मैं आपको अलंकृत करता हूँ, सजाता हूँ। इस सजावट को आप अंगीकार (स्वीकार) कीजिए। अलंकरण करने और प्रभु-सेवा के लिए प्रवेश करने में आपको मेरे पैरों का स्पर्श होगा। कृपया इसके लिए मुझे क्षमा कीजिए।

इसके बाद श्री ठाकुरजी के मन्दिर में सोहनी (बुहारी) करे तत्पश्चात् मन्दिर वस्त्र (लीपन/ पोंछा) करे। उस समय यह प्रार्थना करे-

श्लोक- मार्जनात् कृष्णगेहस्य मनोविक्षेपकं रजः ।
नाशमेति तदर्थं च मार्जयामि तथास्तु मे ॥२॥

आत्मनोऽज्ञानरूपस्य दुरितस्य क्षयाय हि ।
करोमि सेकोपलेपौ त्वद्गृहे गोकुलेश्वरः ॥३॥

भावार्थ - प्रभु श्रीकृष्ण के मन्दिर में मैं बुहारी कर रहा हूँ। इससे मेरे मन में विक्षेप करने वाला जो रजोगुण है, वह भी नष्ट हो। प्रभो ! मेरी मन की रज दूर होकर मन स्वच्छ हो जावे।

जय श्रीकृष्ण। अष्टाक्षर मंत्र (श्रीकृष्ण : शरणंमम) लेखन हेतु कॉपी मँगवाइए। रामनाम बैंक, प्रताप मार्ग, मधलीआली, धार (म.प्र.) के पते पर पोस्टकार्ड पर पूरा पता लिखकर भेजें। -मनोहरलाल अग्रवाल

हे गोकुलेश्वर (निःसहाय गोकुल के स्वामी ! मेरी आन्तर तथा बाह्य इन्द्रियों के भी आप स्वामी हैं) मेरे मन का अज्ञान रूपी पाप क्षय हो जावे इसलिए मैं आपके मन्दिर में लीपन-पोंछा (मन्दिर-वस्त्र) करता हूँ।

इसके बाद प्रभु के विराजने के लिए सिंहासन तैयार करे-

२. *"ततः सिंहासनास्तरणं कुर्यात्"*

श्लोक- **सिंहासनं मद्हृत्पद्मरूपं सज्जीकरोम्यहम् ।**
श्रीगोपीशोपवेशार्थं तथा तद्योग्यतां भज ॥४॥

भावार्थ - हे गोपियों के स्वामी ! आपके विराजने के लिए मैं अपने हृदय-कमल रूप सिंहासन को सजाता हूँ। आप जिस प्रकार गोपियों के हृदय-कमल के सिंहासन पर विराजते हैं, वैसे ही मेरे हृदय-कमल रूप सिंहासन पर विराजिए॥ ४॥

३. *"ततः पात्राणि सज्जी कुर्यात्"*-

फिर भगवत्सेवा के पात्रों को सजावे

श्लोक- **इदं पानीयपात्रं हि तथा व्रजनाथाय कल्पितम् ।**
राधाधरात्मकत्वेन भूयात् तद्रूपमेव तत् ॥५॥[३]

स्वामिनीकररूपाणि भावस्वर्णमयानि वै ।
श्रीकृष्णभोज्य पात्राणि संतु ते मत्कृतानि हि ॥६॥[४]

भावार्थ - हे व्रजनाथ ! यह जल का पात्र (झारी) आपके लिए इस भाव से प्रस्तुत कर रहा हूँ कि यह श्री राधाजी के अधरामृत के अनुरूप हो॥ ५॥

आप स्वामिनीजी के स्वर्ण के समान कांति वाले करों (हाथों) से आरोगते हैं। मैं भी अपने स्वर्णिम भावों से युक्त ये स्वच्छ किये गये पात्र आपके भोज्य पदार्थों (भोग, नैवेद्य) के लिए सुसज्जित करता हूँ॥ ६॥

(श्री गोपेश्वरजी के अनुसार 'भगवद्धाम भगवन्' से लेकर 'मां हि पालय' पर्यन्त नौ श्लोक एवं श्री यमुनाजी की स्तुति के 'हरितुर्य' से लेकर 'भावमुत्तमम्' पर्यन्त दो श्लोक श्रीमद् वल्लभाचार्य महाप्रभुजी द्वारा विरचित हैं। -गो. शरदजी)

श्रीमती सीताबाई बापूलाल नीमा (उज्जैन)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

ग्राह्य इन्द्रियों
लए मैं आपके

।।४।।
अपने हृदय-
य-कमल के
राजिए।। ४।।

तम् ।
।।[३]

हि ।।६।।[४]
इस भाव से
।।
) से आरोगते
आपके भोज्य

पालय' पर्यन्त
र्यन्त दो श्लोक

थजी प्रभुचरण

इसके बाद श्रीठाकुरजी से जागने के लिए प्रार्थना करे

४. *"ततः शय्यातो विज्ञाप्यो उत्थापयेत्"*

श्लोक- **उदेति सविता नाथ ! प्रियया सह जागृहि ।**
अङ्गीकुरुष्व मत्सेवां स्वकीयत्वेन मां वृणु ।।७।।

भावार्थ - हे नाथ ! सूर्य उदित हो रहे हैं। आप स्वामिनीजी सहित जागने की कृपा कीजिए। मेरे द्वारा की जाने वाली सेवा को मुझे अपना ही (स्वकीय) मानकर अंगीकार कीजिए। प्रभु मैं आपका अपना ही हूँ। इस रूप में मेरा वरण कर लीजिए।।७।।

इसके बाद प्रभु को सिंहासन पर पधरावे-

५. *"ततः सिंहासने उपवेशयेत्"*

श्लोक- **क्रीडात्मसाधनयुतं मद्धृद्धामाक्षरात्मकम् ।**
आस्थाय गोकुलाधीश! रमस्व कृपया मयि ।।८।।
भावात्मकतया क्लृप्त स्वोत्तरीयात्मकासने ।
सिंहासने गोकुलेश ! कृपयोपविश प्रभो ।।९।।

भावार्थ - हे गोकुलाधीश प्रभो ! (मेरी इन्द्रियों के स्वामी) मेरा हृदय अक्षरधाम स्वरूप आपका सिंहासन है, जो कि विभिन्न क्रीड़ा-साधनों से युक्त है। आप कृपा-पूर्वक इस पर विराज कर रमण कीजिए।। ८ ।।

हे गोकुलेश ! यह सिंहासन मेरे भाव भीने उत्तरीय के आसन के समान है आप कृपा करके इस पर विराजमान होइए।। ९ ।।

इसके बाद श्रीठाकुरजी को प्रणाम करे, प्रार्थना करे-

६. *"ततो नमस्कुर्याद्"*-

श्लोक- **यादृशोऽसि हरे! कृष्ण! तादृशाय नमोनमः ।**
यादृशोस्मि हरे! कृष्ण! तादृशं मां हि पालय ।।१०।।
नमो नमोऽस्तुते राधे! श्रीकृष्णरमणप्रिये ।
स्वपादपद्मरजसा सनाथं कुरु मच्छिरः ।।११।।

श्रीमती ताराबाई रामचन्द्रजी नीमा (उज्जैन)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

भावार्थ- हे हरि ! हे कृष्ण ! मैं अज्ञानी भला आपकी महिमा को क्या जानूँ ? बस मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप जैसे हैं, मैं उसी रूप में बारम्बार आपको प्रणाम करता हूँ। मैं स्वयं अपने दोषों को नहीं जानता हूँ। मेरी तो आपसे यही विनती है कि मैं जैसा भी हूँ, आपका हूँ। श्री हरि ! प्रभु श्रीकृष्ण ! आप मेरे दोषों पर ध्यान न देकर मेरा पालन कीजिए॥ १० ॥

फिर श्री स्वामिनीजी की स्तुति करे - हे प्रभु श्रीकृष्ण की रमणप्रिया श्री राधाजी ! मैं आपके श्रीचरणों में बारम्बार प्रणाम करता हूँ। कृपा करके अपने चरण-कमल की रज से मेरे मस्तक को सनाथ कीजिए। आपके चरण-कमल की रज मेरे मस्तक पर धारण करके मैं सनाथ, धन्य हो जाऊँगा॥ ११ ॥

५. *"एवं श्रीमत्प्रभुविरचितसेवाविधि नवश्लोक्युक्तवन्दनभक्तिः इति उक्तं... वन्दनभक्तिः नवश्लोक्या विवृता अधुना दास्यभक्तिः सिद्धान्तमुक्तावल्युक्ता वितन्यते स्म "हरितुर्यप्रिय" इति श्लोकद्वयं मर्यादीकृत्य ग्रन्थकर्तृभिः" - श्रीगोपेश्वरचरणाः*

आरंभिक नौ श्लोकों में वन्दन भक्ति है। इसके बाद आगे दास भक्ति है।

इसके बाद आचार्य श्रीमद् वल्लभाचार्यजी को प्रणाम करे।

७. *"ततः श्रीमदाचार्यान् नमस्कुर्यात्"*

श्लोक- चिन्तासन्तानहन्तारो यत्पादाम्बुजरेणवः ॥
स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहः ॥१२॥

भावार्थ - जिनके चरण-कमलों की रज हमारी समस्त चिन्ताओं की अटूट परम्परा को नष्ट कर देती है। ऐसे अपने आचार्य श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ॥ १२ ॥

इसके बाद मंगल भोग की सामग्री प्रभु के सम्मुख धर कर विज्ञप्ति करे-

८. *"ततः पात्रे सामग्रीं संस्थाप्य विज्ञाप्य समर्पयेत्"*

श्लोक- व्रजस्त्रीकरयुग्मात्मयंत्रे पात्रं च तन्मयम् ।
स्थापितं ते भोजनार्थं योग्यभोज्यान्नसम्भृतम् ॥१३॥

श्रीमती सुशीलाबाई लक्ष्मीनारायणजी नीमा (उज्जैन)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

भुङ्क्ष्व भावैकसंशुद्धदधिदुग्धादिमोदकान् ।
प्रियं ते नवनीतं च राधया सहितो हरे! ॥१४॥
भाषणं मा त्यज प्राणप्रिये गोपवधूपतेः ।
त्वन्मुखामोदसुरभिभोज्यं भुंक्तेऽधिकं प्रियः ॥१५॥
राधाधरसुधापातुः किमन्यन् मधुरायितम् ।
यन्निवेद्यं तदप्येतन् नामसंबंधतो भवेत् ॥१६॥
प्रियामुखांबुजामोदसुरभ्यन्नम् अतिप्रियम् ।
अङ्गीकुरुष्व गोपीश तदीयत्वान् निवेदितम् ॥१७॥
निजास्य नवलास्येऽस्मिन् चारुभोज्यं मदर्पितम् ।
भुङ्क्ष्व श्रीगोकुलाधीश ! स्वाधिव्याधी निवारय ॥१८॥
यशोदारोहिणीभावाद् बलेन सह बालकैः ।
भुक्तं यथा बाल्यभावप्राकट्याद् भुङ्क्ष्व मे तथा ॥१९॥
सेवार्थं दत्तगेहस्य निजदास्य मे प्रभो ।
आगंतव्यं भोजनार्थं श्रीकृष्ण ! कृपया गृहे ॥२०॥
देवकीवसुदेवश्रीबलरोहिणीसंयुतः ।
श्रीमन्नन्दयशोदाभ्यां समं मयि कृपां कुरु ॥२१॥
निःकिञ्चनस्य दीनस्य गुणहीनमपि प्रभो ।
शुद्धान्नं तत् स्वदत्तत्वाद् भुंक्ष्व गोकुलनायक ! ॥२२॥

इसके बाद मंगल भोग की सामग्री प्रभु के सम्मुख धरकर विज्ञप्ति करे-

भावार्थ -व्रज की गोपांगनाओं के दोनों हस्तरूपी यंत्र के समान इन पात्रों में आप श्री के आरोगने-योग्य भोज्य सामग्री आरोगने के लिए पधराई है॥ १३॥

निर्मल भावों से अच्छी तरह शुद्ध करके दही-दूध आदि गोरस और मोदक (लड्डू आदि पक्वान्न) तथा आपका प्रिय नवनीत स्वामिनीजी श्री राधाजी सहित आपके आरोगने के लिए प्रस्तुत है। कृपापूर्वक इन्हें आरोगिये॥ १४॥

गोपांगनाओं के प्राणप्रिय प्रभो ! आप आरोगते समय स्वामिनीजी से संभाषण करना न रोकें क्योंकि इससे आपके श्रीमुख की प्रसन्नता होती है और आपके मुख-

कमल की सुगन्ध से भोज्य अर्थात् आरोगने योग्य सामग्री अधिक प्रिय लगती है तथा आप उसे अधिक ग्रहण करते हैं॥ १५॥

आप राधाजी के अधरों के अमृत का पान करते हैं। श्री स्वामिनीजी के अधरों की सुधा से बढ़कर मधुर क्या हो सकता है ? जो भी सामग्री आपश्री को आरोगने के लिए धरी है वह भी श्रीस्वामिनीजी के नाम के सम्बन्ध से ही निवेदित की गयी है अत: यह भी आपको मधुर लगेगी॥ १६॥

हे गोपीश ! प्रियाजी राधाजी के मुख-कमल की सुगन्ध से सुवासित अन्न आपको अत्यन्त प्रिय है, उसी भाव से यह निवेदित किया है। इसे स्वीकार कीजिए॥१७॥

हे गोकुलाधीश ! अपने सुन्दर पल-पल नित्य नूतन लगने वाले श्रीमुख में यह भोज्य सामग्री आरोग कर अपने इस निजजन की आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि (शारीरिक व्यथा) का निवारण कीजिए॥ १८॥

माता यशोदाजी और रोहिणीजी के वात्सल्यभाव के कारण बालभाव प्रकट करते हुए आपने बलरामजी और ग्वाल बालों के सहित भोजन किया था। उसी प्रकार बालभाव को प्रकट करते हुए मेरे द्वारा अर्पित भोजन आप आरोगिए॥१९॥

प्रभु श्रीकृष्ण ! आपने अपने इस निजदास को सेवा के लिए घर दिया है इसलिए कृपा कर इस घर में भोजन के लिए पधारिए॥ २०॥

प्रभो ! आपने देवकीजी-वसुदेवजी, बलरामजी, रोहिणीजी, नन्दरायजी और यशोदाजी पर जैसी कृपा की थी और उनके द्वारा समर्पित सामग्री आरोगी थी, उसी प्रकार मुझ पर भी कृपा करके यह सामग्री आरोगिये॥ २१॥

हे गोकुलनायक ! मैं पूर्णत: साधनहीन निष्कंचन हूँ, दीन हूँ, गुणहीन हूँ। मेरे द्वारा समर्पित किया गया शुद्ध अन्न आपके द्वारा ही दिया गया है। आपके द्वारा दी गयी वस्तु आपको ही समर्पित है। इसे स्वीकार कीजिए।। २२॥

श्रीमती सुशीलाबाई रमेशचन्द्रजी नीमा (उज्जैन)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

प्रभु से निजदास को उच्छिष्ट प्रदान करने की प्रार्थना

श्लोक- भुक्त्वा दत्त्वाऽतिऽप्रियेभ्यो भक्तेभ्योऽतिप्रियं सदा ।
तदात्मशोधकोच्छिष्टं कृतकृत्यं च मां कुरु ॥२३॥
श्रीकृष्णान्तरस्वरूप ! स्वकीयस्य गृहे मम ।
आगत्य भोजनं कृत्वा कृतार्थं कुरु मां विभो ॥२४॥

भावार्थ -भोजन करने के बाद आप अपने अत्यन्त प्रिय भक्तों को अतिशय प्रिय, आत्म-शुद्धि करने वाला, उच्छिष्ट (प्रसाद) प्रदान करते हैं। मुझे भी उच्छिष्ट प्रसाद प्रदान कर कृतकृत्य कीजिए ॥ २३ ॥

प्रभो ! आप तो मेरे अन्तरात्मा हैं, सदा मेरे अन्दर विराजते हैं। मेरा यह घर तो आपका अपना ही है। कृपा करके आप पधार कर यह निवेदित सामग्री आरोग कर मुझे कृतार्थ कीजिए॥ २४ ॥

इसके बाद प्रभु को जल आरोगावे । जल आरोगाने की भावना

श्लोक- प्रियारतिश्रमपरिमलितं वारि यामुनम् ।
समर्पयामि तत्पानं कुरु श्रीकृष्ण! तापहृत् ॥२५॥

भावार्थ -प्रभो ! श्रीकृष्ण ! जिसमें प्रियाजी श्रीस्वामिनीजी के श्रमजल की सुगन्ध मिली हुई है, वह यमुना-जल मैं आपके पान के लिए समर्पित करता हूँ। हे तापहरनेवाले प्रभु श्रीकृष्ण ! इसका पान कीजिए॥ २५ ॥

फिर आचमन करावे । आचमन की भावना -

९. *''ततो आचमनं कारयेद्''*

श्लोक- कुरुष्वाचमनं कृष्ण ! प्रिययामुनवारिणा ।
स्नेहात्मदन्तसक्तान्यभावापाकरणात्मकम् ॥२६॥

भावार्थ -प्रभु श्रीकृष्ण ! स्नेहात्मक भावों से परिपूर्ण दाँतों में लगे हुए कण के समान अन्य भावों को दूर करने वाले आपके प्रिय श्री यमुनाजी के जल से आचमन कीजिए॥ २६ ॥

रूपसिंहजी दलाल (उज्जैन)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

आचमन के बाद मुख-वस्त्र करे। मुख- वस्त्र करने की भावना-

श्लोक- स्नेहाद् रतिश्रमजलप्रोञ्छद् राधाकराञ्चलम् ।
स्मृत्वाऽऽनन्दभरान् नाथ ! कुरु श्रीमुखमार्जनम् ॥२७॥

भावार्थ -जब स्वामिनी श्री राधाजी ने स्नेहपूर्वक आपके रतिश्रम से उत्पन्न जलकणों को अपने हाथ से अपने आँचल से पोंछा है, उस स्नेहपूर्ण क्षण को याद करके आनन्द में मग्न होकर आप मुख-मार्जन कीजिए॥ २७॥

इसके बाद श्रीठाकुरजी को पान की बीड़ी समर्पित करे। ताम्बूल ग्रहण करने की प्रार्थना तथा भावना-

१०. *"ततः ताम्बूलम् अर्पयेत्"*

श्लोक- ताम्बूलं स्वप्रियावक्त्रसौरभ्यरतिसंयुतम् ।
गृहाण गोकुलाधीश ! तत्कपोलाभपाण्डुरम् ॥२८॥

भावार्थ -यह पान की बीड़ी श्री स्वामिनीजी के मुख की सुगन्ध और उनके प्रेम से युक्त है। यह प्रियाजी के कपोल की आभा के समान ही पांडुर (पीत आभा वाला पका हुआ) है। हे गोकुलाधीश प्रभो ! इसे आरोगिये॥ २८॥

इसके बाद मंगला आरती करे। प्रभु के शृंगार बड़े करे (उतारे) तथा स्नान और नूतन शृंगार के लिए विनती करे।

११. *"ततः आरात्रिकं कृत्वा स्नानादि शङ्गारार्थं विज्ञाप्य, स्नानादिकं कारयेद्"*-

श्लोक- रमणातिभराद्रात्रौ वस्त्राण्याभूषणानि हि ।
मृगजानि च वस्त्राणि प्रसीदोत्तारयामि ते ॥२९॥
प्रियाङ्ग-सङ्ग-सम्बन्धि-गंध-सम्बन्धतो भवेत् ।
कदाचित् कस्यचिद् भावो यतः स्नानं समाचर ॥३०॥
स्नेहात्मगन्धतैलेन प्रियागन्धातिचारुणा ।
अभ्यक्तो मङ्गलस्नानं कुरु गोकुलनायक ! ॥३१॥
स्नेहात्मगंधतैलस्य लापनाद् गोकुलाधिप ! ॥
वितरात्यंतिकीं भक्तिं मयि स्नेहात्मिकां विभो ॥३२॥
श्रीसुगंधोद्वर्तनेन निशाश्रमनिवारणात् ।
उद्वर्तितः कृष्ण ! भक्तिदानेन कुरु मे कृपाम् ॥३३॥

अरुण हरिलालजी गुप्ता, (उज्जैन)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

दिवा त्वद्वनगमनस्मरणात् तापभावतः ।।
गोपिकास्पर्शनोष्णेन वारिणा स्नापयाम्यहम् ।।३४।।

भावार्थ -रात्रि में रमण करने के कारण आपश्री के वस्त्र और आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये हैं। प्रभो ! कृपा करके मुझे वस्त्र, आभूषण, कस्तूरी लेप आदि उतारने की अनुमति प्रदान कीजिए।।२९।।

आपश्री के शरीर की सुगन्ध से संभव है किसी के मन में यह भाव हो कि यह सुगन्ध प्रियाजी के अंगों का सम्पर्क होने से हुई है, अतः प्रभो ! स्नान कीजिए।।३०।।

हे गोकुलनायक प्रभो ! स्वामिनीजी की मनोहारी सुगन्ध से युक्त स्नेहात्मक सुगन्धित तेल के लेपन तथा अत्यन्त प्रिय मनोहर सुगन्धित उबटन लगा कर मैं आपको मंगल स्नान कराता हूँ।।३१।।

हे गोकुल के अधिपति ! स्नेहमय सुगन्धित तेल का मैं लेपन करता हूँ। आप मुझे स्नेहात्मिका उत्कृष्ट (आत्यन्तिकी) भक्ति का दान कीजिए।।३२।।

रात्रि के श्रम का निवारण करने के लिए मैं श्रीलक्ष्मीजी के समान सुगन्धित उबटन श्रीअंगों में समर्पित करता हूँ। प्रभो ! मुझे ऐसी ही सुगन्धित भावमयी भक्ति का दान करने की कृपा कीजिए।।३३।।

मैं उष्णजल से आपश्री को स्नान कराता हूँ। दिन में जब आप वन में पधारे थे तब गोपियों को आपके विरह का ताप हुआ था। आपके विरह ताप से तप्त गोपिकाओं के स्पर्श से यह जल गरम हो गया है। उसी उष्ण जल से आपश्री को स्नान कराता हूँ।।३४।।

स्नान के उपरांत प्रभु के श्रीअंग को पोंछने की भावना-

श्लोक- स्नानार्द्रतानिवृत्त्यर्थं प्रोञ्छिताङ्ग विभो ! मम ।।
दूरीकुरुष्व गोपीश ! कृपया लौकिकार्द्रताम् ।।३५।।

स्नान से आपका श्रीअंग गीला हो गया है। उस गीलेपन (आर्द्रता) के निवारण के लिए मैं आपके श्रीअंग को पोंछता हूँ। हे गोपीश ! कृपा करके आप मेरी लौकिक

श्रीमती मोहिनीदेवी बद्रीलालजी चौधरी (मोहन बडोदिया)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

आर्द्रता, लौकिक में आसक्ति अर्थात् लगाव को दूर कीजिए॥३५॥

इसके बाद शृंगार की भावना करे-

श्लोक- गोपिकावद् विप्रयोगे कालक्षेपाय सर्वथा ।
कृष्णमूर्तिं प्रियां कृत्वा भजेत् तत्-तत्स्वभावतः ॥३६॥

भावोत्थविप्रयोगेऽपि न स्थातुं शक्यते यतः ।
अतः स्वहृद्गतैर् भावैः भूषयेत् तं मनोमयम् ॥३७॥

व्रजेश ! रसरूपात्मन् शृङ्गारं रचयाम्यहम् ।
स्वीकुरुष्व त्वदीयत्वात् स्वप्रियावत् कृतं निशि ॥३८॥

भावार्थ -जब आप वन में पधार जाते थे तो गोपिकाएँ वियोग काल को अच्छी तरह से व्यतीत करने के लिए अपने मन में आपके प्रिय स्वरूप को पधराकर मन के दिव्य भावों से आपका शृंगार करती थीं। मैं भी उन्हीं दिव्य भावों से आपका शृंगार करता हूँ॥३६॥

भावों से उत्पन्न विप्रयोग (विरह) में रह पाना संभव नहीं होता है अतः आपके प्रिय स्वरूप को हृदय में पधराकर अपने हृदय के दिव्य भावों से उसे अलंकृत करता हूँ॥३७॥

हे व्रजेश ! हे रसरूपात्मन् प्रभो ! मैं आपका शृंगार करता हूँ। रात्रि में प्रियाजी श्रीस्वामिनीजी ने आपका भावना के साथ शृंगार किया था और आपने प्रसन्नता से उसे स्वीकार किया था उसी प्रकार इस अपने दास के द्वारा किये हुए शृंगार को भी मुझे अपना ही मानकर आप स्वीकार कीजिए॥३८॥

तत्पश्चात् अंगराग धरावे । अंगराग धराने की भावना

श्लोक- कुचकुङ्कुमगन्धाढ्यम् अङ्गरागम् अतिप्रियम् ॥
श्रीकृष्णतापशान्त्यर्थम् अङ्गीकुरु मदर्पितम् ॥४०॥

रामचन्द्रजी रमेशचन्द्रजी गुप्ता (मोहन बडोदिया)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

भावार्थ -प्रियाजी के कुचों के कुंकुम की अत्यंत प्रिय सुगंध से युक्त यह अंगराग प्रभु आपके विरह-ताप की शान्ति के लिए अर्पित करता हूँ। कृपा करके इसे अंगीकार कीजिए॥४०॥

इसके बाद वस्त्र धरावे। वस्त्र धराने की भावना

श्लोक- प्रियाङ्गतुल्यवर्णानि वस्त्राणि व्रजनायक !
समर्पयामि कृपया परिधेहि दयानिधे ! ॥४०॥

भावार्थ -हे व्रजनायक ! प्रियाजी के अंगों के वर्ण वाले, उनके अंगों की झलक और छटावाले वस्त्र मैं आपश्री को समर्पित करता हूँ। ये दयासागर प्रभो ! दया करके इन्हें धारण कीजिए॥४०॥

इसके पश्चात् विविध अलंकार श्रीठाकुरजी को धारण करावे। अलंकार धराने की भावना-

श्लोक- भूषणान्यवतारात्मकान्येतान्यर्पयामि ते ।
प्रियाङ्गतुल्यकान्तीनि प्रसीद व्रजसुन्दर ! ॥४१॥
प्रियानासाभूषणस्थ-बृहन्मुक्ताफलाकृतिम् ।
समर्पयामि राधेश ! गुञ्जाहारम् अतिप्रियम् ॥४२॥
मिलितान्योन्याङ्गकान्ति-चाकचक्यसमं विभो ! ॥
अंगीकुरुष्वोत्तमांगे केकिपिच्छमतिप्रियम् ॥४३॥
गोपस्त्रीदृक्स्थितं श्रीमच्छ्रृङ्गारात्मकमञ्जनम् ॥
शोभार्थं मातृवद् दत्तम् अङ्गीकुरु व्रजाधिप ॥४४॥
कस्तूरीतिलंक भाले चित्रं चारु कपोलयोः ॥
दृष्ट्वा प्रियाकृतं हृष्टः तथा मुदम् अवाप्नुहि ॥४५॥
मुखाब्जमकरंदाम्रिलोभेन रसभावतः ।
मधुपायितचित्तानि व्रजरत्नानि तानि ते ॥४६॥

भावार्थ -प्रभो ! आपके आभूषण साधारण नहीं हैं। ये तो भक्तों के ही विविध रूप, अवतार वाले हैं। मैं उन दिव्य आभूषणों को समर्पित करता हूँ। इन आभूषणों की कान्ति प्रियाजी के अंगों की दिव्य कान्ति के समान है। हे व्रजसुन्दर

रमेशचन्द्रजी विश्वकर्मा (मोहन बडोदिया)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

प्रभु श्रीकृष्ण ! प्रसन्न होकर इन आभूषणों को धारण कीजिए ।।४१।।

प्रभो ! आप राधाजी के स्वामी हैं। उन प्रियाजी के नाक के आभूषण के बड़े मोती की आकृति वाले गुंजों का यह अत्यंत प्रिय गुंजाहार आपको समर्पित करता हूँ।।४२।।

मयूरपिच्छ (मोरपंख) तो आपको अतिशय प्रिय है। यह आपके अंग की कान्ति से मिलता-जुलता है तथा इसमें आपके श्रीअंग की चकाचौंध (चमक) भी है। यह मोरपंख आपश्री को समर्पित करता हूँ। कृपा करके इसे मस्तक पर धारण कीजिए।।४३।।

हे व्रजाधिप ! व्रजांगनाओं के नेत्रों में स्थित आपके अंगों के शृंगार की कान्ति के समान अंजन आपको समर्पित करता हूँ। माता यशोदाजी ने आपकी शोभा के लिए जो काजल लगाया था और आपने प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वीकार किया था, उसी प्रकार मेरे द्वारा समर्पित इस अंजन को भी आप अंगीकार कीजिए।।४४।।

प्रभो ! आपके ललाट पर कस्तूरी का तिलक लगाता हूँ। आप प्रियाजी के द्वारा आपके सुन्दर कपोलों पर बनाये गये कस्तूरी के चित्र देखकर जिस प्रकार प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार मुझे आपकी प्रसन्नता मिले, ऐसी कृपा कीजिए।।४५।।

जिस प्रकार भँवरा कमल के मकरन्द की प्राप्ति के लोभ से, मधुपान से सन्तुष्ट होता है, उसी प्रकार आपश्री के मुखकमल के मकरन्द, रस-पान की लालसा में मेरा चित्त भँवरे के समान व्रजरत्न बनकर रसपान से तृप्त और प्रसन्न होवे।।४६।।

इसके बाद माला धरावे। माला धराने की प्रार्थना एवं भावना

श्लोक- **कुसुमान्यर्पितानीश ! प्रसीद मयि संततम् ।**
कृपासंहृष्टदृग्वृष्टया तदङ्गीकृतिशोभितः ।।४७।।

भावार्थ -हे नाथ ! ये पुष्प, पुष्पमाला आपको समर्पित हैं। इसके धारण करने से आपकी शोभा और भी बढ़ गयी है। कृपा करके मुझ पर कृपा-दृष्टि की वर्षा

मुरलीधरजी केला (मोहन बडोदिया)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

कीजिए। आप सदा मुझपर प्रसन्न रहिए॥४७॥

फिर वेणु धरे तथा प्रार्थना करे

श्लोक- प्रियाकारणदौत्यैक-भावेनातिप्रियं सदा ।
वेणुं धृत्वाधरे कृष्ण ! पूरय स्वामृतस्वरैः ॥४८॥

भावार्थ -प्रियाजी को बुलाने वाली दूती के भाव से वेणु (बाँसुरी) सदा ही आपको अतिप्रिय है। प्रभो ! इस वेणु को अधरों पर धारण करके इसमें अपने अमृत स्वर भरें। प्रभो ! उन अमृतस्वरों से इस दासी को भी बुलाइए॥४८॥

इसके बाद प्रभु को आरसी दिखावे। आरसी दिखाने की भावना-प्रार्थना

श्लोक- प्रियानखात्मकादर्शे विलोक्य वदनाम्बुजम् ।
व्रजाधीश ! प्रमुदितः कृपया मां विलोकय ॥४९॥

भावार्थ -प्रियाजी के नख रूपी आरसी (दर्पण) में अपना मुख-कमल देखकर व्रजाधीश प्रभो ! आप प्रमुदित होते हैं। कृपापूर्वक उस प्रसन्न दृष्टि से मुझे भी देखिए॥४९॥

इस प्रकार श्रीठाकुरजी के शृंगार करके, सिंहासन पर विराजमान करके आरसी दिखाकर श्रीजी के सम्मुख गोपीवल्लभ भोग की सामग्री सजावे 'व्रजस्त्रीकर----' इत्यादि श्लोकों से विज्ञप्ति करे फिर 'भाषण' इत्यादि दो श्लोकों की विज्ञप्ति (देखें श्लोक संख्या १३ तथा १४ का आधा भाग तथा १५-१६ से) से गोपी-ऋवल्लभ भोग समर्पित करे।

१२. *''एवं शृङ्गारं कृत्वा सिंहासने उपवेश्य सामग्रीम् अग्रे स्थाप्य ''व्रजीस्त्रीकर..'' इत्यादिसार्धपद्येन विज्ञाप्य''भाषणम्...'' इत्यादिपद्यद्वयेन विज्ञाप्य अनेन पद्येन समर्पयेद्''*

श्लोक- गोपिकाभावतः स्नेहाद् भुक्तं तासां गृहे यथा ।
मदर्पितं तथा भुंङ्क्ष्व कृपया गोपिकापते ॥५०॥

भावार्थ - हे गोपिकापति प्रभु श्रीकृष्ण ! गोपिकाओं का भाव देखकर आपने उनके घर में प्रेमपूर्वक आरोगा था, उसी प्रकार मेरे द्वारा समर्पित सामग्री भी कृपा करके आरोगें॥५०॥

श्रीमती किरण गंगराडे (खंडवा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

इसके बाद आचमन-मुखवस्त्र करके पान की बीड़ी समर्पित करे।
फिर घैया (दुग्धफेन) और दूध आरोगावे।

१३. *''ततो यथावद् आचमनं कारयित्वा ताम्बूलम् अर्पयेत् ततो दुग्धफेन दुग्धञ्च अर्पयेत्'*

श्लोक- स्वर्णपात्रे पयः-फेन-पानव्याजेन सर्वतः।
अभ्यस्यति प्राणनाथः प्रियाप्रत्यङ्गचुंबनम् ॥५१॥

गोपार्पितपयफेन-पानं यद्भावतः कृतम्।
मदर्पितपयःफेन-पानं तद्भावतः कुरु ॥५२॥

भावार्थ -हे प्राणनाथ ! स्वर्णपात्र में पान करने के लिए पयःफेन (घैया) समर्पित है। जिस प्रकार आप प्रियाजी के प्रत्येक अंग का चुम्बन प्रेमपूर्वक करते हैं, उसी प्रकार मेरे द्वारा अर्पित घैया का पान कीजिए॥५१॥

जिन प्रकार गोपियों द्वारा समर्पित पयःफेन आपने प्रेमपूर्वक ग्रहण किया था उसी प्रकार भावपूर्वक मेरे द्वारा अर्पित घैया (पयःफेन) स्वीकार कीजिए॥५२॥

ततः पुनराचमनं कारियत्वा तांबूलं अर्पयेत् ततः पायसादिकम् अर्पयेत्''

इसके बाद पुनः आचमन करवाकर पान की बीड़ी समर्पित करे उसके बाद पायस समर्पित करे।
पायस-समर्पण की प्रार्थना एवं भावना।

''ततः पुनः आचमनं कारयित्वा ताम्बूलम् अर्पयेत् ततः पायसादिकम् अर्पयेत्।

श्लोक- व्रजस्त्रीकृतशृंगारानंतरं तद्गृहे यथा।
अभोजि पायसं ताभिः सह भुंक्ष्व तथैव मे ॥५३॥

भावार्थ - प्रभो ! जिस प्रकार व्रज की स्त्रियों के द्वारा शृंगार किये जाने के बाद उनके घर में आपने उनके साथ पायस (खीरान्न) भोजन किया था, उसी प्रकार मेरे घर में भी मेरे द्वारा समर्पित पायस आरोगिए॥५३॥

ततः पुनः आचमनं कारयित्वा ताम्बूलम् अर्पयित्वा[६] आरात्रिकं कुर्यात्''

इसके बाद पुनः आचमन करवाकर ताम्बूल (बीड़ी) समर्पित करे तथा आरती करे।
आरती की भावना इस प्रकार प्रकट करते हुए प्रार्थना करे।

प्रहलादभाई लाड (खंडवा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्लोक- अमङ्गलनिवृत्त्यर्थं मङ्गलावाप्तये तथा ।
कृतम् आरात्रिकं तेन प्रसीद पुरुषोत्तम ! ॥५४॥

हे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण अमंगल की निवृत्ति और मंगल की प्राप्ति के लिए मैंने आरती की है। इससे आप प्रसन्न होइए॥५४॥

('तृतीयम् आरात्रिकम् इदं क्वचित् लुप्तम्''- श्रीगोपेश्वरचरण। यह तीसरी आरती अनेक स्थानों पर प्रायः लुप्त हो गयी है।)

आरती के बाद बालस्वरूप भगवान् को पलने में झुलावे।
पलना झुलाने की भावना तथा प्रार्थना इस प्रकार है।

श्लोक- प्रेम्णा मत्प्रेंखशयन-दोलने श्रीयशोदया ।
सिताद्यमर्पितं भुक्तं भुंक्ष्वेदं च तथैव मे ॥५५॥

भावार्थ -यशोदा मैया ने आपको प्रेमपूर्वक पलने में पोढाकर पलना झुलाया था फिर आपने उनके द्वारा अर्पित मिश्री आदि का भोग आरोगा था। उसी प्रकार आप मेरे घर में भी पलने में झूलें तथा मेरे द्वारा समर्पित मिश्री आदि का भोग आरोगिए॥५५॥

इसके बाद खिलौने सजाकर प्रभु को खेलने के लिए प्रार्थना करे।

१६. *''ततो अग्रे क्षणं क्रीडार्थम् अक्षादीन् निवेदयेत्''।*

श्लोक- क्रीडारूपात्मकैरक्षैः क्रीडार्थं स्थापितैः प्रभो ।
क्रीडां कुरु महाराज ! गोपिकाभिश्च राधया ॥५६॥

भावार्थ - प्रभो ! खिलौने के रूप में पासे आदि आपकी क्रीडा के लिए प्रस्तुत हैं। महाराज ! आप स्वामिनीजी श्रीराधाजी एवं गोपिकाओं के साथ पासे खेलिए॥५७॥

इसके बाद माला बड़ी करके धूप-दीप करे तथा राजभोग समर्पित करे।
धूप-दीप की भावना इस प्रकार करे

१७. *''ततो राजभोगं समर्पयेत्''-*

श्लोक- श्रीमद्राराधाङ्गसौगन्ध्यागरुधूपार्पणाद् विभो ।
भावात्मकृतसामग्र्यां भोगेच्छां प्रकटीकुरु ॥५७॥

श्रीमती प्रेमलता कृष्णदास हुरकट (खंडवा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

दीपः समर्पितो भोग्य-रूपान्नार्थंप्रदीपने ।
तद्दीपनेन चोद्दीप्तभावो भोजनमाचर ।।५८।।

भावार्थ -प्रभो ! स्वामिनीजी श्रीराधाजी के अंगों की सुगंध के समान अगरू की धूप अर्पित कर रहा हूँ। इस भावात्मक सामग्री को स्वीकार करने इच्छा प्रकट कीजिए।५७।।

भावार्थ -भोज्य सामग्री के प्रकाशन हेतु दीप प्रज्वलित करके समर्पित किया गया है। इस प्रज्वलित दीपक के समान ही भाव उद्दीप्त हों तथा आपश्री भोज्य सामग्री आरोगें।।५८।।

विभिन्न भोजन पात्रों की भावना तथा सामग्री सजाने की विधि

श्लोक- व्रजस्त्रीकरयुग्मात्मयंत्रे पात्रं च तन्मयम् ।
स्थापितं ते भोजनार्थं भोग्यभोज्यान्नसम्भृतम् ।।५९।।

स्वर्णपात्रेषु दुग्धादि दध्याद्यं राजतेषु च ।
मृत्पात्रेषु रसालाद्यं भोज्यं सद्रोचकादिकम् ।।६०।।

राजते नवनीतं च पात्रे हैमे सिता तथा ।
यथायोग्येषु पात्रेषु पायसव्यञ्जनादिकम् ।।६१।।

सूपौदनं पोलिकादिं तथान्नं च चतुर्विधम् ।
भुंक्ष्व भावैकसंशुद्धं राधया सहितो हरे ।।६२।।

भावार्थ -ये भोजन के पात्र व्रजांगनाओं के दोनों हस्तरूपी यंत्र के समान हैं जिनमें आपके आरोगनेयोग्य विविध भोज्य सामग्री परोसी गयी है।।५९।।

स्वर्ण पात्र में दुग्ध आदि, चाँदी के पात्र में दही आदि, मिट्टी के पात्रों में रसीली रुचिकर भोजन, सामग्री परोसी है।।६०।।

चाँदी के पात्र में माखन, सोने के पात्र में मिश्री, यथायोग्य पात्रों में पायस, विविध व्यंजन, शाक-भाजी परोसे हैं।।६१।।

भगवानदास बंसल, अतुल बंसल, संजय बंसल एवं परिवार (खंडवा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

दाल-भात, रोटी-पूरी तथा चार प्रकार की (लेह्य, चोष्य, पेय, खाद्य भोज्य सामग्री) परोसी है। सम्पूर्ण सामग्री हृदय के भावों से अच्छी तरह शुद्ध की गयी है। प्रभु श्रीहरि! आप इसे स्वामिनी श्रीराधाजी के साथ आरोगिए॥६२॥

राजभोग सामग्री पर दृष्टि-दोष न हो इसलिए शंख का जल छिड़कना।
तत्सम्बन्धी भावना एवं प्रार्थना।

श्लोक- कम्बुनाम्नातिप्रियश्रीशंखांतर्गतवारिणा।
दृष्ट्यादिदोषाभावाय सामग्री प्रोक्षिता विभो॥६३॥

भावार्थ -प्रभो! कंबु नाम के आपके अतिप्रिय शंख के जल से सामग्री का प्रोक्षण किया गया है, जिससे कि राजभोग की सामग्री को किसी की दृष्टि का दोष न लगे॥६३॥

१८. "भाषणं मा त्यज' इति श्लोकचतुष्टयेन समर्पयेत् ततः श्रीमदाचार्येषु समर्पयेद्"। 'भाषणं मात्यज' इति चार श्लोकों (१५ से १८ तक) से राजभोग समर्पित करे।

राजभोग की सामग्री में तुलसी पधरावे। तुलसी पधराने की भावना तथा प्रार्थना इस प्रकार है।

श्लोक- प्रक्षिप्ता तुलसी तेऽति-प्रियगंधा तथैव च।
कुरुष्व तेनातितुष्टो भोजनं व्रजनायक!॥६४॥

भावार्थ -हे व्रज के नायक प्रभु श्रीकृष्ण! तुलसी की गंध आपको अतिप्रिय है। इस सामग्री में तुलसी पधरायी है इससे अति संतुष्ट होकर राजभोग आरोगिए॥६४॥

इसके बाद श्रीमदाचार्य को भोग समर्पित करे। सम्प्रदाय की परम्परानुसार आचार्यश्री की पादुकाओं को भोग समर्पित किया जाता है।

श्लोक- स्वार्थप्रकटसेवाख्यमार्गे श्रीवल्लभप्रभो।
निवेदितस्य मे भोज्यं स्वास्ये कुरु हुताशन!॥६५॥

भावार्थ - श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रभो! आपने दैवी निजजनों के कल्याण के लिए भगवत्सेवा के पुष्टिमार्ग को प्रकट किया है। आप साक्षात् हुताशन, वैश्वानर

रामदयाल लादूराम (खंडवा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

अग्निस्वरूप हैं। आपके लिए यह भोग निवेदित है। कृपा करके इसे आरोगिए॥६६॥

समय होने पर आचमन कराकर बीडी आरोगाए। फिर जहाँ राजभोग पधराया गया है। उस स्थान पर मन्दिरवस्त्र (पोछा, लीपन) करे। प्रभु के राजभोग आरोगने के उच्छिष्ट पात्रों को अच्छी तरह से माँजे। लीपन-पोंछा आदि करते समय तथा पात्र माँजने के समय यह भावना करे।

१९. *"ततो यथावद् आचमनं कारयित्वा ताम्बूलम् अर्पयेत् ततो भोजनपात्रस्थले मार्जनं कुर्याद्"।*

श्लोक- गोकुलेश तवोच्छिष्ट-लेपात् पात्रप्रमार्जनात्।
त्वत्सेवांतरधर्मेषु रतिर भवति निश्चला॥६६॥

भावार्थ -हे गोकुलेश! आपके भोजन-स्थल के लेपन करने पोंछा लगाने तथा उच्छिष्ट पात्रों के भली प्रकार से माँजने रूप आपकी सेवा के बाद में होने वाले इन धर्मों (कार्यों) से आपके प्रति सुदृढ, कभी न डिगने वाली निश्चल प्रीति होती है। (मुझे सेवा के बाद के कर्म करने का सौभाग्य मिला, मैं धन्य हो गया हूँ मुझे सुदृढ निश्चल भक्ति प्रदान कीजिए॥६६॥

बाद में ब्रह्मसम्बन्ध के महामंत्र के उच्चारणपूर्वक प्रभु के चरणारविन्द में तुलसी समर्पित करे।

श्लोक- "ततः चरणयोः तुलसीं समर्पयेत्"
प्रियाङ्गगंधसुरभितुलसीं ते पदप्रियाम्।
समर्पयामि मे देहि हरे देहमलौकिकम्॥६७॥
प्रसीद पूजितो भक्त्या तुलस्या प्रियगंधया।
निष्किंचनाधीश नान्यत् कर्तुं शक्नोमि सर्वथा॥६८॥

भावार्थ -प्रियाजी के श्रीअंग की सुगन्ध से युक्त तुलसी आपके श्रीचरणों की प्रिया है। वही मैं आपके श्रीचरणों में समर्पित करता हूँ। प्रभो! मुझे भी अलौकिक देह प्रदान कर चरणों का दास बना लीजिए॥६७॥

प्रभो! मैं तो अकिंचन हूँ और आप निष्कंचनों के स्वामी हैं। जिस तुलसी की गंध आपको अतिशय प्रिय है, उसी तुलसी-समर्पण के द्वारा मैने भक्तिभाव से, प्रेमपूर्वक आपका पूजन (सेवा) किया है। इसके अतिरिक्त मैं निष्कंचन, निःसाधन

मनोज सोनी (खंडवा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

जीव क्या कर सकता हूँ ? इसके अलावा अन्य कुछ भी करने में मैं असमर्थ हूँ। आप मुझ अकिंचन पर प्रसन्न होइए ॥६८॥

इसके बाद सिंहासन के आगे पादपीठिका (सीढी) सजावें। पाद पीठिका भावना -

श्लोक- हृत्पंकजात्मकं स्वर्णं पादपीठं समर्पितम् ।
पादौ धृत्वा गोकुलेश हृत्तापं समपाकुरु ॥६९॥

भावार्थ -हे गोकुलेश प्रभो ! मैं हृदय-कमल रूप स्वर्ण का पादपीठ समर्पित करता हूँ। आप इस पर अपने श्रीचरण धर कर मेरे हृदय के ताप को पूरी तरह से मिटा दीजिए ॥ ६९॥

इसके बाद माला धराकर आरती करे और विज्ञप्ति करे।

२१. *"ततः आरात्रिकं कृत्वा विज्ञापयेद्"*।

श्लोक- भक्तार्थाविर्भूतरूप कृष्ण ! ते चरणाब्जयोः ।
सर्वाशुभविनाशार्थं न्यस्तः पुष्पाञ्जलिः शुभः ॥७०॥
अमङ्गलनिवृत्त्यर्थं मङ्गलावाप्तये तथा ।
कृतम् आरार्तिकं तेन प्रसीद पुरुषोत्तम ! ॥७१॥

भावार्थ -हे प्रभु श्रीकृष्ण ! आप तो भक्तों पर कृपा करने के लिए ही अवतरित हुए हैं। मैं समस्त अशुभों के विनाश के लिए मंगलमयी पुष्पांजलि आपके श्रीचरणों में समर्पित करता हूँ ॥७० ॥

हे पुरुषोत्तम अमंगल की निवृत्ति के लिए और मंगल की प्राप्ति के लिए मैने आपश्री की आरती की है। आप इससे प्रसन्न हों ॥७१॥

प्रार्थना-विज्ञप्ति

श्लोक- प्रीतो देहि स्वदास्यं मे पुरुषार्थात्मकं स्वतः ।
त्वद्दास्यसिद्धौ दासानां न किञ्चिद् अवशिष्यते ॥७२॥

जयन्तीभाई दलाल (खंडवा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

एतावदेव विज्ञाप्यं सर्वथा सर्वदैव मे ।
त्वमीश्वरोसि गीतं ते क्षुद्रोहं न विदामि हि ।।७३।।

परमकारुणिको न भवत्परः परमशोच्यतमो न हि मत्परः
इति विचिन्त्य सदा मयि किङ्करे यदुचितं व्रजनाथ! तवाचर।।७४।।

कियान् पूर्वं जीवस्तदुचितकृतिश्चापि कियती ।
भवान् यत् सापेक्षो निजचरणदास्ये बत भवेत् ।।

अतः स्वात्मानं स्वं निरुपममहत्त्वं व्रजपते,

समीक्ष्यास्मन् नेत्रे शिशिरय निजास्याम्बुरसैः ।।७५।।

स्वदोषान् जानामि स्वकृतिविहितैः साधनशतैः ।
अभेद्यांस्त्युक्तं चापदुतरमना यद्यपि विभो ।।
तथापि श्रीगोपीजनपदपरागांचितशिराः ।
त्वदीयोऽस्मीति श्रीव्रजनृप न शोचामि मुदितः ।।७६।।

भावार्थ -प्रभो! आप प्रसन्न होकर मुझे अपना दास्य दीजिए। मुझ में आपक दास भाव जगे, ऐसी कृपा कीजिए। प्रभु का दासभाव स्वतः पुरुषार्थ रूप है। जिस यह जाग गया उसे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप अन्य किसी पुरुषार्थ की सिद्धि की अपेक्षा नहीं होती। भगवान् के सहज दास, जीव में यदि दास्य भाव सिद्ध हो गया तो उसे और कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रहता। समझो वह कृतकृत्य हो गया, धन्य हो गया।।७२।।

मेरे नाथ! मुझे तो सदैव यही निवेदन करना है कि आप ईश्वर हैं, सर्वसमर्थ और सबके शासक हैं, मैं तो अत्यन्त क्षुद्र हूँ। भला मैं आपकी अपार महिमा को, महान् कीर्ति को क्या जानूँ? ।।७३।।

हे निःसाधन व्रज के नाथ! आपसे बढ़कर अन्य कोई परम करुणावान्, दीनो पर अतिशय दया करने वाला नहीं है और मेरे समान परम शोचनीयों में भी अत्यधिक शोचनीय अर्थात् परम दयापात्रों में भी सबसे अधिक दयापात्र मेरे अतिरिक्त अन्य

नन्दकिशोर पोरवाल (खंडवा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

कोई नहीं है। यह विचार कर व्रजनाथ ! मुझ दास, चरणसेवक के प्रति जो उचित हो, वह करें॥७४॥

आपकी शरण में आने के पूर्व मेरे कितने उचित-अनुचित कर्म थे, इस पर आप विचार न कीजिए। आपके श्रीचरणों का दास बनने वाले जीव से आप क्या अपेक्षा रखते हैं, इसे भी भूल जाइए। हे नि:साधन व्रज के अधिपति व्रजनाथ ! आप तो अपने अनुपम, अप्रतिम महत्त्व पर ही विचार कर अपने मुख-कमल के रस से हमारे नेत्रों को शीतल कीजिए। प्रभो ! मैं अपने कर्मों से तथा अपनी पात्रता से तो आपकी कृपा का पात्र नहीं हूँ किन्तु आपकी दीन-नि:साधन-निष्कंचनों पर दया करने की महिमा अद्वितीय है, उसका कोई सानी नहीं है। हे नाथ ! अपनी उसी महिमा पर ध्यान देकर मुझे अपने मुखारविन्द के दर्शन करा दीजिए जिससे मेरे नेत्र शीतल हो जावें॥७५॥

हे व्रज के राजा प्रभु श्रीकृष्ण ! मैं अपने दोषों को जानता हूँ। उन दोषों को दूर करने के लिए मैंने सैकड़ों उपाय भी किये हैं किन्तु मैं मानसिक रूप से अचतुर, मूर्ख हूँ इसलिए मैं अपने दोषों को भेद नहीं सका, उन दोषों को मिटा नहीं सका। तो भी अब मैं किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करता, मैं अपने अभेद्य दोषों पर विचार ही नहीं करता क्योंकि मेरा मस्तक श्री गोपीजन के चरणों के पराग से सिंचित हो गया है। अब मैं गोपीजनों के प्रेमपंथ का अनुयायी हो गया हूँ, उनकी मुझ पर कृपा हो गयी है। अब मैं आपका ही हो गया हूँ अत: मैं निश्चित और प्रसन्न हूँ॥७६॥

मध्याह्न में प्रभु गोचारण करते हैं तथा कुंजों में विश्राम करते हैं।
इसकी भावना वैष्णव को मध्याह्न में इस प्रकार करनी चाहिए -

श्लोक- प्रियासङ्केतकुञ्जीयवृक्षमूलेषु पल्लवैः।
कृतेषु भावतल्पेषु क्रीडन् गोचारणं कुरु॥७७॥

सेवितोऽत्र हरे रन्तुं गृहे मद्हृदयात्मके।
निमीलयामि दृग्द्वारं विलसैकांतसद्मनि॥७८॥

भाविनी बेन पटेल (खंडवा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

भावार्थ -प्रभो ! आप गोचारण कीजिए तथा प्रियाजी के संकेत-स्थलों में क्रीडा कीजिए। ये संकेत-कुंज वृक्षों के मूल में, सघन पत्तों से ढँके हुए हैं। यहाँ प्रियाजी ने अपने भावों का बिस्तर सजाया है। वहाँ आप क्रीडा करें, विश्राम करें॥७७॥

श्री हरि ! अभी तक अपने घर में मैंने सेवा की है। अब आप मेरे हृदयरूपी घर में रमण करें। आप इस हृदयरूपी घर के एकान्त में रमण कर सकें इसलिए मैं नेत्ररूपी द्वार बन्द करता हूँ॥७८॥

इसके बाद ठाकुरजी के वस्त्र आदि धोने चाहिए। वस्त्र धोते समय इस प्रकार भावना करनी चाहिए तथा प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए।

२२. *''ततो वस्त्रप्रक्षालनादिकं कुर्याद्''।*

श्लोक- वस्त्रप्रक्षालनाद् दुष्टसंसर्गजमनोमलम् ।
महत्सेवाबाधरूपं मम कृष्ण ! निवारय ॥७९॥

भावार्थ -प्रभो ! आपश्री के वस्त्रों को धोने से मेरे मन में दुष्टों के संसर्ग से जो मैल जमा हो गया है, जो कि प्रभु आपकी सेवा में महाबाधक है, प्रभु श्रीकृष्ण आपके वस्त्र प्रक्षालन से मन के इसी मैल का निवारण कर दीजिए॥७९॥

सन्दर्भ- स्वयं परिचरेद् भक्त्या वस्त्रप्रक्षालनादिभिः। सर्वनिर्णय-२३७

दिन के चौथे (अन्तिम) पहर में पौढे हुए प्रभु को जगाकर उन्हें फलादि का भोग धरे।

२३. *''ततः चतुर्थप्रहरे प्रसुप्तं प्रबोध्य फलादिकम् अर्पयेत्''*

श्लोक- यथा गोवर्धने भुक्तं फलमूलादिकं हरे ।
रामेण सखिभिः सार्धं पुलिंदीभिः समर्पितम् ॥८०॥

तथा फलादिकं सर्वं भुङ्क्ष्व भावार्पितं मया ।
पुलिन्दीवद् भावदानात् सार्थकं जन्म मे कुरु ॥८१॥

भावार्थ -प्रभु श्रीहरि जिस प्रकार बलरामजी और सखाओं के साथ पुलिन्दियों (भील बालाओ) के द्वारा समर्पित कन्दमूलादि आरोगे थे उसी प्रकार मेरे द्वारा भावपूर्वक समर्पित ये फल आदि समस्त सामग्री आरोगिए। प्रभो ! पुलिन्दियों

के समान ही मुझे भाव का दान देकर मेरा जन्म सार्थक कीजिए॥८०-८१॥

इसके बाद भोग सराकर प्रभु को आचमन करावे तत्पश्चात् वन से व्रज में पधारते हुए प्रभु से निवेदन करे।

२४. *"ततो व्रज आगच्छन्तं विज्ञापयेद्"*

श्लोक- बलभद्रादयो गोपा गावश्चाग्रे च पृष्ठतः।
गोपिकावेष्टितो मध्ये रणद्वेणुर्व्रजागमात् ॥८२॥

दिवा विरहजं तापं व्रजस्थानां यथा हृतम्।
तथा मल्लोचने नाथ ! शिशिरीकुरु सन्ततम् ॥८३॥

भावार्थ -बलरामजी आदि गोपों से तथा गायों से आगे तथा पीछे की ओर से घिरे हुए तथा बीच में गोप बालकों से आवेष्ठित (घिरे हुए) प्रभु श्रीकृष्ण वेणु बजाते हुए व्रज में पधार रहे हैं। आप ऐसे दर्शन देकर व्रजवासियों के ताप को जिस प्रकार हर लेते हैं उसी प्रकार नाथ ! मेरे नेत्रों को सदैव निरन्तर शीतल कीजिए॥८२-८३॥

इसके बाद दूधघर की सामग्री, मोदक आदि प्रभु को समर्पित करे तथा विज्ञप्ति करे।

२५. *"ततो यत्किञ्चिन् मोदकादि समर्पयेत्"*

श्लोक- श्रीमन्नंदयशोदादिप्रेम्णा भुक्तं व्रजे यथा।
भोजनं कुरु गोपीश ! तथा प्रेमार्पितं हरे ॥८४॥

भावार्थ -हे गोपीश ! जिस प्रकार व्रज में श्री नन्दरायजी, यशोदा मैया आदि के द्वारा प्रेमपूर्वक प्रस्तुत किये गये भोग को आपने आरोगा था, उसी प्रकार श्री हरि मैंने यह सामग्री प्रेमपूर्वक समर्पित की है, आप कृपा करके इसे आरोगिए॥८४॥

उसके बाद संध्या आरती करे। दिनभर के शृंगार उतारने के लिए प्रभु से विनती करे तथा घैया (दुग्धफेन) अर्पण करे।

२६. *"ततो आरात्रिकं कृत्वा शृङ्गारोत्तारणार्थं विज्ञाप्य, उत्तार्य, पयःफेनं पयो वा समर्पयेत्"*

गोविन्ददास महेशकुमार मोदानी (ब्यावरा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्लोक- राधिकाश्लेषांतराय भूषणोत्तारणात् प्रभो ।
निशि तत्कृतशृंङ्गाराङ्गीकारार्थं प्रसीद मे ।।८५।।

व्रजे स्वानंदतो दोहं बलेन सह गोपकैः ।
कृत्वा पीतं पयःफेनं तथा पिब व्रजाधिप ।।८६।।

भावार्थ -प्रभो ! रात्रि में स्वामिनीजी श्री राधाजी के आलिंगन में बाधक बनने वाले आभूषणों को उतारने की अनुमति देवें तथा रात्रि में राधाजी के आलिंगन में बाधक न बनने वाले अलंकार उनके द्वारा धारण कराये जाने पर धारण कीजिए। मुझ पर प्रसन्न होइए।।८६।।

व्रज में जिस प्रकार बलरामजी और गोपों के साथ आप आनन्दपूर्वक गायें दुह कर घैया (पयःफेन) आरोगते थे, हे व्रजाधीश ! यहाँ भी उसी प्रकार घैया आरोगिए।।८७।।

इसके बाद तमोदीप समर्पित करके श्रीठाकुरजी को दूध-अन्न आदि ब्यालू में अर्पण करो।

''तमोदीपं निवेद्य, निशि दुग्धान्नादि समर्पयेत्''

श्लोक- वासरीयवियोगातराधिकास्यावलोकने ।
दीपार्पणाद् गोपिकेश ! प्रसीद करुणानिधे ।।८७।।

दुग्धान्नादि यथा भुक्तं रोहिण्युपहृतं निशि ।
व्रजनायक भोक्तव्यं तथैव हि मदर्पितम् ।।८८।।

भावार्थ -हे करुणानिधि ! दिन भर के वियोग से आर्त (दुःखी) श्री राधिकाजी के मुख के अवलोकन के लिए मैं दीप अर्पण कर रहा हूँ प्रभो ! आप मुझ पर प्रसन्न हों।।८७।।

व्रजनायक ! जिस प्रकार रोहिणीजी के द्वारा लाये गये दूध, अन्न आदि के भोजन को आपश्री ने आरोगा था, उसी प्रकार मेरे द्वारा समर्पित भोग सामग्री को भी आरोगिए।।८८।।

गणेशरामजी कन्हैयालालजी की ओर से माधवदास करोडिया
एवं परिवार (ब्यावरा) के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

इसके बाद शयनभोग सराकर, ताम्बूल समर्पित कर आचमन आदि कराकर आरती करे। तत्पश्चात् प्रभु से शयन के लिये विनती करे और प्रभु को शयन करावे।

२८. "ततः ताम्बूलाचमनादिकं विधाय, आरात्रिकं कृत्वा, शयनार्थं विज्ञाप्य, शयनं कारयेद्"

श्लोक- भावात्मकास्मद्हृदयपर्यङ्क शेषरूपके -

रमस्व राधया कृष्ण ! शयानो रसभावतः ॥८९॥

भावार्थ -प्रभो श्रीकृष्ण ! मेरा भावों से भरा हुआ हृदय आपके लिए शेष नाग रूपी शैया के समान है। आप उस पर पोढें तथा रसभाव से, प्रेमपूर्वक राधिकाजी के साथ रमण करें॥८९॥

(रात्रि अनवसरकी भावना)

श्लोक- अयि व्रजसखि व्रजवधू कदंबाम्बिका-
समर्पण फलीभवच्चचरण पंकजस्यांतिकम् ॥

नितंबमिलदंबरक्वणित हेमदामाङ्गना-
वृतस्य नलिनावली प्रतिभटप्रभस्य द्रुतम् ॥९०॥

निर्भरं क्रीडतोरालि ! कुञ्जे विगतवाससोः ।
अन्योन्यप्रभयैवासीदन्योन्यस्योचितांशुकम् ॥९१॥

रतिश्रमशयानयोरलसलोचनांभोजयोः ।
कलं किमपि कूजतोरभिमुखं मिथः सस्मितम् ॥

रताङ्गभरिताङ्कयोर्मिलितजानुसंवाहने ।
पदाम्बुजतलानि मद्हृदि लुठन्तु राधेशयोः ॥९२॥

केलिश्रांतशयानश्रीराधाश्रीशपदसरोजानि ।
कृपया कृतानि मदुरसि कदा नु संलालयिष्येऽहम् ॥९३॥

प्रातः कुञ्जगृहाद् बहिर्यदि समागत्य स्थिता त्वं
भवस्यंभोजाक्षि ददासि चर्वितमिदं चाकार्य हस्तेन तु ॥

ताम्बूलस्य यदा पुनस्तदिह सच्छिद्रस्य मुक्त्यापि च ।
कार्यं किं सततं प्रसीदसि यदि त्वं स्वामिनीत्थं तदा ॥९४॥

घनश्यामदास कैलाशनारायण अटाटावाला (ब्यावरा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

भावार्थ -अरी व्रज सखि ! गोपियों ने सामूहिक रूप से जिनके चरण-कमल रूपी फल की प्राप्ति के लिए अम्बिका की पूजा-उपासना की थी, चल उनके निकट हम शीघ्र चलें। नितम्ब पर पहने हुए वस्त्र से टकरा कर जिनकी स्वर्ण-मेखला ध्वनि कर रही हैं, उन व्रजांगनाओं से प्रभु श्रीकृष्ण घिरे हुए हैं, जिनकी प्रभा कमल-समूह से भी बढकर है॥९०॥

कुंज में उन्मुक्त भाव से विगतवस्त्र क्रीड़ा करते हुए राधाजी एवं श्रीकृष्ण दोनों की प्रभा ही एक-दूसरे के लिए उचित वस्त्रावरण का कार्य कर रही है॥९१॥

रति-श्रम के कारण अलसाये हुए जिनके नयन-कमल हैं, जो एक-दूसरे के अभिमुख होकर मुस्कुराते हुए अस्पष्ट प्रेमालाप कर रहे हैं, जो परस्पर आलिंगनबद्ध हैं, जिनके जानु परस्पर सम्पृप्त हैं, उन राधा-कृष्ण के चरण-कमल के तल मेरे हृदय में विलास करें॥९२॥

केलि से थक कर सोये हुए राधा-कृष्ण के चरण-कमल कब मेरे हृदय पर वे कृपापूर्वक पधराएँगे और कब मुझे यह सौभाग्य मिलेगा कि मैं उन चरण-कमलों को अच्छी तरह से सहलाऊँगा ? ॥९३॥

हे कमल के समान नेत्रों वाली स्वामिनीजी ! यदि आप प्रातःकाल अपने कुंज से बाहर विराज रही हों और अपना चर्वित ताम्बूल प्रसन्न होकर स्वयं अपने श्रीहस्त से मुझे प्रदान करें तो फिर मुझे मुक्ति से भी क्या प्रयोजन? इस सौभाग्य के आगे मुक्ति का भी मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं है॥९४॥

"एतावती श्रीगोपीनाथजितां पद्धतिरूपा कृतिः"- श्रीगोपेश्वरचरणाः

श्री गोपेश्वरजी के मतानुसार श्री गोपीनाथजी प्रभुचरण-विरचित नित्यसेवा विधिक श्लोक यहाँ तक ही हैं।

इसके बाद सम्प्रदाय के अनुसार साधन-फलके निर्देशपूर्वक उपसंहार प्रस्तुत है।

श्लोक- श्रीवल्लभाचार्यमते फलं तत्प्राकट्यमत्राव्यभिचारिहेतुः ।
प्रेमैव तस्मिन्नवधोक्तभक्तिः तत्रोपयोगोऽखिलसाधनानाम् ॥९५॥

बालकृष्ण दिनेशचन्द्रजी (ब्यावरा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

ततो यदिन्दीवरसुन्दराक्षीवृतस्य वृंदाविपननंदितांघ्रेः ।
सर्वात्मभावेन सदास्यलास्यमस्यानिशं सानु फलानुभूतिः ॥९६॥

भावार्थ -श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के मतानुसार भगवान् श्रीकृष्ण का प्राकट्य ही सेवा का फल है और उसका एकमात्र साधन प्रेम ही है। इसी भगवत्प्रेम के साधन रूप ही अव्यभिचारिणी, एकनिष्ठ नवधा भक्ति तथा समस्त अन्य साधन उपयोगी हैं।

अतः हे कमल के समान सुन्दर नेत्र वाली ! वृन्दावन में आनन्दित करने वाले प्रभु श्रीकृष्ण की लीला की कथा, दास्य और सर्वात्मभाव से ही सदा इस फल की अनुभूति होती है।

सन्दर्भ- विशिष्ट रूपं वेदार्थः फलं प्रेम च साधनम्।
तत्साधनं नवविधा भक्तिस् तत्प्रतिपादिक ॥ *सर्वनिर्णय-२२०*

श्लोक- श्रीमदाचार्यपादाब्जं भवद् येषां हृदि स्थिरम् ।
सदा श्रीराधिकाकान्तः तत्र तिष्ठति सुस्थिरः ॥९७॥
अतः पितृपदाम्भोज-भजनं सर्वथा मतम् ।
उत्तमानामितो नान्या कृतिः काचन विद्यते ॥९८॥
मानुष्यप्राप्तिसाफल्यं यत् संसारविरागिता ।
सात्त्विकत्वस्य साफयं श्रीकृष्णस्यानुरागिता ॥९९॥

भावार्थ -जिनके हृदयों में श्रीमद् आचार्यश्री के चरण-कमल स्थिर रूप से विराजते हैं, उन्हीं के हृदयों में श्री राधिकाकान्त प्रभु श्रीकृष्ण अच्छी तरह से स्थिर होकर वास करते हैं॥९८॥

अतः पितृचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के चरण-कमलों का भजन ही सर्वथा उचित है। श्रेष्ठ भक्तों के लिए, उत्तम कोटि के भगवदीयों के लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई कर्म नहीं है॥९९॥

मनुष्यजन्म की सार्थकता-सफलता इसी में है कि संसार से विराग हो और प्रभु श्रीकृष्ण से अनुराग हो। जो सात्त्विक जन हैं उनके जीवन की सफलता इसी में है॥९९॥

ब्रजमोहन दामोदरदास (ब्यावरा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

पंचामृत की भावना तथा स्नान के लिए निवेदन इस प्रकार करे-

श्लोक- पञ्चामृतेन भावात्मरूपेणातिप्रियेण ते ।
स्नापयामि ततः स्नात्वा हृदि मे सुस्थिरो भव ॥१०१॥

भावात्मक रूप से प्रस्तुत अतिप्रिय पंचामृत से मैं आपश्री को स्नान कराता हूँ। उससे स्नान करके आप मेरे हृदय में भली प्रकार स्थिर रूप से विराजिए॥१०१॥

श्लोक- प्रियाहास्यप्रभातुल्य-रूपेण पयसा गवाम् ।
स्नानं समाचर विभो कम्बुस्थेन व्रजेश्वर ! ॥१०२॥

प्रियाजी के हास्य की प्रभा के समान गाय का उज्ज्वल-निर्मल दूध है, जिसे मैं शंख में भर कर स्नान कराता हूँ। हे व्रजेश्वर ! कृपया दुग्ध से स्नान कीजिए॥१०२॥

श्लोक- राधिकास्यामृतकरचन्द्रिकाविशदेन वै ।
सरसेन घनेनेह दध्ना स्नानं समाचर ॥१०३॥

श्री राधिकाजी के मुखचन्द्र की स्वच्छ, शुभ्र चाँदनी के समान विशद सरस गाढ दही है, आप दही से स्नान कीजिए॥१०३॥

श्लोक- प्रियाधरामृतस्पन्दमधुरेण महाप्रभो ।
शङ्खस्थितेन मधुना स्नात्वा मुदम् अवाप्नुहि ॥१०४॥

प्रियाजी के अधरों के अमृत स्पन्दन की मधुरता से युक्त मधु शंख में भर कर लाया हूँ, महाप्रभो ! इस मधु से आप स्नान कर प्रसन्न होइए॥१०४॥

श्लोक- प्रियास्नेहैकरूपेण घृतेन व्रजनायक ! ।
स्नानं स्नेहात्मकं कृत्वा स्निग्धतां प्रकटीकुरु ॥१०५॥

हे व्रजनायक ! प्रियाजी के स्नेह रूप घृत से स्नेहपूर्वक स्नान करके स्निग्धता (स्नेह का भाव) प्रकट कीजिए॥१०५॥

श्लोक- प्रियाप्रत्यङ्गसौन्दर्यमाधुर्यसमतां गतम् ।
तया शर्करया स्नात्वा प्रत्यङ्गोच्छूनतां व्रज ॥१०६॥

प्रिया श्री स्वामिनीजी के अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य की मधुरता के समान मधुर शर्करा से स्नान करके माधुर्य से पुष्ट होइए।।

भक्त की दीनता युक्त प्रार्थना

श्लोक- हा नाथ ! हा रमण ! हा करुणैकसिन्धो !
हा कृष्ण ! हा पतितपावन ! दीनबन्धो ! ।।
संसारसागरमहोर्मिषु मज्जमानं
माम् उद्धर प्रणतपालक ! बालकृष्ण ! ।।१।।

प्रणतजनों का पालन करने वाले ! हे नाथ ! स्वामिनीजी के साथ, भक्तों के हृदयों में और सारे जगत् में रमण करने वाले प्रभो ! हे दयासागर ! हे पतितपावन ! हे दीनबन्धो ! हे श्रीकृष्ण ! मैं संसार-सागर की ऊँची-ऊँची और भयानक महालहरों में डूब रहा हूँ। प्रभु बालकृष्ण ! आप तो शरणगतों के पालक हैं, कृपया मेरी रक्षा कीजिए।।१।।

नामसेवा से कृतकृत्यता

श्लोक- 'श्रीबालकृष्णे'ति नाम सकलाभीष्टदं कलौ ।।
जिह्वाग्रे वर्ततां तेन सदा मे कृतकृत्यता ।।२।।

हे प्रभु बालकृष्ण ! आपका नाम ही कलियुग में सभी इष्ट कामनाओं की पूर्ति करनेवाला है। वही आपका नाम मेरी जिह्वा पर सदा रहे, जिससे मैं सदा कृतकृत्य होता रहूँ।।२।।

भोग आरोगने के लिए पधारने की प्रार्थना

श्लोक- अप्रियं सप्रियं वापि धनहीनस्य मे प्रभो ।।
मद्गृहे भोजनार्थाय ह्यागन्तव्यं महाप्रभो ।।३।।

प्रभो ! मैं अप्रिय हूँ या सप्रिय हूँ, जो भी हूँ, मैं धनहीन हूँ किन्तु आप तो महा प्रभु हैं, कृपा करके मेरे घर भोजन आरोगने के लिए पधारिए।।३।।

मूलचन्दजी अम्बावतिया (नेपानिया)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्लोक- या प्रीतिर्विदुरार्पिते मुरिपो कुन्त्यर्पिते यादृशी
या गोवर्द्धनमूर्ध्नि या च पृथुके स्तन्ये यशोदार्पिते ।।
भारद्वाजसमर्पिते शबरिकादत्तेऽधरे योषितां
या प्रीतिर् मुनिपत्निभक्तरचिते ह्यत्रापि तां तां कुरु ।।४।।

हे मुरारि ! विदुरजी के द्वारा समर्पित सामग्री, कुन्तीजी के द्वारा प्रस्तुत किया गया भोजन, गोवर्द्धन पर गोप-गोपिकाओं द्वारा लायी गयी भोजन-सामग्री तथा यशोदा मैया के स्तन का दूध आपने जिस प्रकार प्रेमपूर्वक स्वीकार किया था, उसी प्रकार प्रीतिपूर्वक मेरे घर भी भोग आरोगिये। आपने सुदामा के तन्दुल, शबरी के बेर और ऋषिपत्नियों की भक्तिभाव से अर्पित सामग्री को जिस प्रकार प्रीतिपूर्वक आरोगा था, उसी प्रकार का प्रेम रखते हुए मेरे यहाँ भी आरोगिये ।।४।।

श्लोक- यशोदायाः स्तन्ये तदनु नवनीते व्रजगवां
विहारे दध्यन्ने द्विजयुवतिदत्ते बहुगुणे ।।
तथा मित्रात् प्राप्ते पृथुकवर-मुष्टौ मुरहरे
यथा प्रीतिस्तां मे प्रकटय सुनैवेद्यनिचये ।।५।।

जिस प्रकार आपने प्रेमपूर्वक यशोदा मैया के स्तनों से दुग्ध-पान किया था, उसके बाद बड़े होने पर आपने ब्रज की गायों का माखन जिन प्रेमभाव से ग्रहण किया था, ब्रज में विचरण करते हुए व्रजांगनाओं के द्वारा बहुत गुणवाला तथा पर्याप्त मात्रा में दिये गये दधि, भात, विविध पक्वान्न आपने जैसे प्रेमपूर्वक आरोगे थे, जिस प्रकार अपने मित्र सुदामा के मुट्ठीभर चावल आपने प्रीतिपूर्वक ग्रहण किये थे, हे मुरारि ! वही प्रीति प्रकट करते हुए मेरे द्वारा निवेदित इस नैवेद्य (भोग) को ग्रहण कीजिए।।५।।

श्लोक- विदुरस्य गृहे प्रीत्या यथा भुक्तं निजेच्छया ।।
तथैव भुंक्ष्व नैवेद्यं मयि नाथ ! कृपां कुरु ।।६।।

हे नाथ ! विदुरजी के घर आपने स्वेच्छा से जैसे प्रेमपूर्वक आरोगा था, हे

रामशंकरजी काबरा (शोभापुर-होशंगाबाद)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

नाथ ! मुझ पर भी कृपा करके मेरे द्वारा पधराये गये इस भोग (नैवेद्य) को प्रेमपूर्वक यथेच्छ आरोगिए॥६॥

श्लोक- यथा त्वं गोपिकादिभ्यो निजानन्दं प्रयच्छसि ॥
तथैव भुक्तशिष्टान्नं भक्तेभ्यो यच्छ पुष्कलम् ॥७॥

जिस प्रकार आप गोपिकाओं को उन्मुक्त होकर अपार आनन्द प्रदान करते हैं, उसी प्रकार आरोगने के बाद भक्तों को प्रचुर मात्रा में महाप्रसाद रूप में अधरामृत (भुक्तशिष्टान्न) प्रदान कीजिए॥७॥

श्री यमुनाजी की स्तुति

श्लोक- वृन्दारण्यगतं रास-रसोन्मत्तमतं गजम् ॥
बबन्ध गोपबालैका बहु शृङ्खलया निशि ॥१॥

रास के रस से उन्मत्त गज के समान वृन्दावन में प्रविष्ट रसिक को एक गोपी ने रात्रि के समय अनेक साँकलों से बाँध लिया॥१॥

श्लोक- हरितुर्यप्रिये ! कृष्णे ! प्रेम्णा भोज्यं मदर्पितम् ॥
अङ्गीकुरुष्व कृपया सफलं जन्म मे कुरु ॥२॥

श्री हरि की चतुर्थ प्रिया ! कृष्णा ! श्री यमुनाजी मेरे द्वारा प्रेमपूर्वक समर्पित भोग को कृपापूर्वक आरोग कर मेरा जीवन सफल कीजिए॥२॥

श्लोक- नमस्ते सच्चिदानन्द-रसरूपिणि सूरजे ! ॥
कुमारीष्विव मे देहि श्रीकृष्णे भावमुत्तमम् ॥३॥

सच्चिदानन्द-रसरूपिणी ! सूर्य पुत्री ! श्री यमुने ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपने व्रज की कुमारिकाओं को प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रति उत्तम भाव प्रदान किया था, उस प्रकार मुझे भी प्रभु श्रीकृष्ण में उत्तम भाव प्रदान कीजिए॥३॥

("हरितुर्य" इति आरभ्य "भावमुत्तमम्" इत्यन्तं श्लोकद्वयं च श्रीमत्प्रभुविरचित-सेवाविधिः" विवृतिके अनुसार ये दो श्लोक २ एवं ३ श्रीमहाप्रभुविरचित हैं।)

बालकृष्ण प्रकाशचंद्रजी चांडक (जबलपुर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

विज्ञप्ति, निवेदन

श्लोक- त्वदीयमधुसूक्तिभिर् व्रजजनेशसङ्गाशया
मनोजशरपीडिता: कथमपि स्थिता मेऽसव: ॥
अत: परमये यदि प्रियतमाङ्गसङ्गो भवेत्
तदैव मम जीवितं विरहितादशाह्लीकरम् ॥१॥

हे व्रजजनों के स्वामी ! आपके मधुर मंगलमय वचनों से आश्वस्त होकर आपके संग की आशा में कामदेव के बाणों से पीड़ित होकर भी मेरे प्राण किसी तरह अटके हुए हैं। यदि विरह की इस परम-चरम अवस्था में प्रियतम आपके श्रीअंग का संग हो जाए तभी विरहावस्था में मेरा जीवित रहना श्रेयस्कर है॥१॥

श्लोक- श्रीगोकुलनाथोऽस्माकम् ऐहिकं पारलौकिकं च ॥
स्वयमेव जातोस्तीति किमस्माकं विचारणीयमस्ति॥२॥

जब गोकुल के नाथ प्रभु श्रीकृष्ण स्वयं प्रकट हुए हैं तो हमें अपने इस लोक या परलोक सम्बन्धी किसी भी प्रकार की चिन्ता ही क्या है ? ॥२॥

श्लोक- "चिन्ता कापि न कार्या" "गोवर्द्धननाथो ॥
अस्मत्कुलपति: , अस्मद्धितमेव करिष्यति " ॥३॥

श्री महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने आज्ञा की है 'किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें' क्योंकि हमारे कुल के स्वामी श्री गोवर्द्धननाथ हैं, वे हमारा हित ही करेंगे॥३॥

श्लोक- किं ब्रुवाणि सखि प्रेष्ठविरहानलदाहिता ॥
जीवामीत्येतदेवालं निरपत्रपतास्पदम् ॥४॥

सखि क्या कहूँ ? प्रियतम के विरह में दग्ध होकर भी मैं जीवित हूँ, यही मेरी निर्लज्जता प्रकट करने के लिए पर्याप्त है॥४॥

श्लोक- सख्येतल्लेखनीयं त्वयातियत्नेन राधिका (कान्त:) ॥
किं कृपयिष्यत्यथवा मनोरथेनैव जन्मनिर्वाह: ॥५॥

स्व. चन्दन गौरी मगनबाई धाबलिया (अकोला)
की स्मृति में धाबलिया परिवार के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

सखि तुम्हें यह अंकित कर लेना चाहिए कि या तो हमें राधापति श्रीकृष्ण मिलेंगे या हम जीवनभर उनके मिलन की मनोकामना करती हुई जीवन बिताएँगी ॥५॥

श्लोक- मदन्तः स्नेहवशतो मच्छरीरव्यवस्थितिम् ॥
जानन्तोऽपि न जानन्ति तत्तूचिततरं हि वः ॥६॥

अन्तर्तम के स्नेह के कारण मेरे शरीर की क्या स्थिति है, उसे जानते हुए भी न जानना ही क्या तुम्हारे लिए अधिक उचित है ? ॥६॥

श्लोक- यथा नर्तयति स्वामी वस्तुतस्त्वपराधिनम् ॥
मां तथाहं तु नृत्यामि भृशं क्लिष्टोऽस्मि तेन हि ॥७॥

वस्तुतः मैं अपराधी हूँ। मुझे स्वामी जैसा नचाते हैं, मैं वैसा ही नाचता हूँ। मैं इस स्थिति से बहुत दुःखी हूँ ॥७॥

श्लोक- त्रपावैराग्यराहित्याद् भवदार्तिजिहीर्षया ॥
पुनस्तत्रागताविच्छां करोमि स्नेहयन्त्रितः ॥८॥

मैं चाहता हूँ कि आपके विरह की वेदना समाप्त हो जाए किन्तु सांसारिक स्नेह से बँधा हुआ होने के कारण मैं लज्जा और वैराग्य से रहित होकर पुनः सांसारिक बन्धनों में बँधने की इच्छा करता हूँ ॥८॥

श्लोक- परं तु तदनुरूपं शरीरं नैव वर्तते ॥
तथापि यदि पञ्चम्यां स्वास्थ्यं किञ्चिद् भविष्यति ॥९॥

अभी तो मेरा शरीर भी उसके अनुरूप नहीं है फिर भी अन्तिम अवस्था में संभव है अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होने की स्थिति बन जावे ॥९॥

श्लोक- तदा समागमिष्यामि दुःखं मा कुरुत प्रियाः॥
सर्वेशे गोकुलाधीशे शरणाएव सर्वतः ॥१०॥

प्रियाजी आप दुःख मत कीजिए। मैं उस समय अवश्य आऊँगा क्योंकि सर्वेश गोकुलाधीश की सभी स्थितियों में सब प्रकार से मैं शरण में हूँ वे ही मेरे

एकमात्र आश्रय स्थल हैं ॥१०॥

श्लोक- अतश्चिन्ता न कर्तव्या भवद्भिः कृष्णसात्कृतैः ॥
श्री गोकुलजीवनः सर्वं भद्रमेव करिष्यति ॥११॥
अहं यथाशीघ्रं दर्शनं प्राप्नोमि तथा विधेयं प्रत्यहम् ॥१२॥

जिन्होने गोकुल के जीवनरूप प्रभु श्रीकृष्ण के अधीन, कृष्णमय अपना जीवन बना लिया है वे किसी प्रकार की चिन्ता न करें। प्रभु अपने समर्पित सेवक का सब प्रकार से कल्याण ही करेंगे ॥११॥ जिससे शीघ्र ही आपके दर्शन प्राप्त करूँ, वैसा ही करूँगा ॥१२॥

श्लोक- ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः ।
सम्पत्स्वापत्स्वपि सदा शरणं हरिरेव हि ॥१३॥

महाप्रभुजी ने हमें कल्याण का मार्ग दिखाया है। चाहे इस लोक में, चाहे परलोक में कल्याण की अभिलाषा हो, जो भी हो हमें पूरी तरह से श्रीहरि की ही शरण लेना चाहिए। चाहे सम्पत् के अच्छे दिन हों और चाहे विपत्ति के बुरे दिन हों, हर स्थिति में सदैव श्रीहरि ही हमारे एकमात्र शरणस्थल हैं, आश्रय हैं। उन्हीं की शरण में रहें ॥१३॥

सन्दर्भ (१) ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः ॥९॥
अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः ॥१०॥ *(विवेक धैर्याश्रय)*

■

श्रीलक्ष्मणसुत ग्रह बजत बधाई ॥
प्रगटे श्रीगोपीनाथ प्रथम सुत सङ्कर्षणवपु माई ॥१॥
छन्दरूप नररूप मनोहर कीनी जग दरसाई ॥
कोटि अनङ्ग रोम-रोमन प्रति महिमा वेदन गाई ॥२॥
अति उदार करुणामय अक्षण उग्र प्रताप सहाई ॥
एसे जानि शरण आयो यह रसिकदास सिर नाई ॥३॥

सौ. ऋचा राजेश शर्मा (अकोला)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

सेवा की भावना

महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य चरण का ध्यान

'सौन्दर्यं निजहृद्तं प्रकटितं स्त्रीगूढभावात्मकं
पुंरूपञ्च पुनस्तदन्तरगतं प्रावीविशत् स्वप्रिये ॥
संश्लिष्टावुभयोर्बभौ रसमयः कृष्णो हि तत्साक्षिकं
रूपं तत्त्रितयात्मकं परमभिध्येयं सदा वल्लभम् ॥१॥

सर्वरसभोक्ता प्रभु श्रीकृष्ण के अन्दर अपने स्वरूप के दान के लिए एक गूढ भोग्यभावात्मक (स्त्री भावात्मक) सौन्दर्य है। इसी प्रकार अपने स्वरूपानन्द के उपभोग के लिए प्रकट किये गये स्वामिनी स्वरूप में भी भगवान् के स्वरूपानन्द के उपभोग के भाववाला एक गूढ भोक्तृभावात्मक (पुरुष भावात्मक) सौन्दर्य है। भगवान् में गूढ (गुप्त) रूप से रहने वाला भोग्य भावात्मक (स्त्रीभावात्मक) सौन्दर्य और स्वामिनीजी में रहने वाला गूढ (गुप्त) भोक्तृभावात्मक (पुरुष भावात्मक) सौन्दर्य कभी अत्यधिक रसोद्बोधन की अवस्था में उमड़ कर प्रकट हो जाता है, अन्यथा गुप्त ही रहता है। दोनों में स्थित गूढ सौन्दर्य कभी उमड़ कर प्रकट होकर अपनी रसात्मिका लीला के परिकर साक्षीभूत तीसरे स्वरूप को पात्र के रूप में अवलम्ब बनाता है। इस प्रकार इस रसलीला में प्रकट हुए भगवान् के गूढ स्त्री भावात्मक सौन्दर्य और स्वामिनीजी के प्रकट हुए गूढ पुंभावात्मक सौन्दर्य के मिश्रण से प्रकट हुए रसात्मक कृष्ण के प्रियपात्र श्रीमद्वल्लभाचार्य इसके साक्षी बनते हैं। इस प्रकार गूढ (१) स्त्रीभाव (भोग्य) (२) गूढ पुं भाव (भोक्तृ) और (३) साक्षी भाव इन तीनों के त्रितयात्मक रूप श्रीमद् वल्लभाचार्यजी महाप्रभु ही पुष्टि जीवों के अतिशय प्रिय (वल्लभ) होने के कारण सर्वोत्कृष्ट रूप से ध्यान करने योग्य हैं॥१॥

(यह श्लोक श्री मूलचन्द्र तेली वाला के द्वारा 'पुष्टिभक्ति सुधा' मासिक पत्रिका में 'श्रीमद्गोपीनाथानां पद्यानि' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ है।)

श्रीमती गंगाबाई कालूरामजी घुरका (अकोला)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

श्री यशोदाजी की स्तुति

अहो भाग्यवती देवी ! यशोदा ! नन्दगेहिनी ।
गोविन्दमङ्कमारोप्य मुखं चुम्बति सादरम् ॥२॥

नन्दरायजी की गृहणी देवी श्री यशोदाजी आप भाग्यशालिनी हैं, जो कि गोविन्द (प्रभु श्रीकृष्ण) को आदरपूर्वक अपनी गोद में बैठाकर उनका मुख चूमती हैं॥२॥

सेवा के लिए स्नान की अलौकिक भावना

श्रीराधे प्रियतमदृक्सङ्गमसञ्जातहासरुक्तरलैः ।
भवदीयैः स्नानं मे भूयात् सततं न पाथोभिः ॥१॥

श्री राधाजी ! आपके तथा प्रियतम श्रीकृष्ण प्रभु के नयनों के मिलने से मन्द-मन्द मुस्कान की जो तरल तरंगें उठती हैं, उनसे सतत मेरा स्नान हो, न कि सामान्य जल से॥१॥

(इसके आगे के सात पत्र त्रुटित हो गये हैं। विवृतिकार गोपश्वरजी का कथन है कि इन पृष्ठों में 'जप-नाम प्रशंसा, प्रातः कृष्णनमन, संध्या, होम, ब्रह्मयज्ञ, गौण कालिक लौकिक-वैदिक कर्म, अभ्यवहार-पान-तत्फल-स्वोच्छिष्टदान-विधि-तद्ग्रहण, प्रतिमा-भावना आदि विषय रहने की संभावना है ।)

भावात्मक स्वरूप का ध्यान

भावात्मकत्वात् तद्रूपं गुणातीतं सदैव हि ।
ध्येयं तद्रूपभावेन शुद्धैर् जीवैर् न चान्यथा ॥१५॥

पुष्टिमार्गीय शुद्ध जीवों को प्रभु के भावात्मक होने के कारण उनके भावात्मक तथा गुणातीत रूप का ही सदैव ध्यान करना चाहिए। उनके लिए अन्य किसी रूप का ध्यान अपेक्षित नहीं है॥१५॥

भगवत्सेवा से ब्रह्म बोध रूप अवान्तर फल की प्राप्ति तथा
मानसी सेवा- रूपा मुख्य भक्ति की प्राप्ति-

सौ. छबुताई अशोकराव बाजड़ (अकोला)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

लीलारूपैश्च तत्सेव्यं तदीयत्वाय सर्वदा ।
एतत् संसेवनाद् ब्रह्मभूतो भक्तिं लभेत् पुनः ॥१६॥

प्रभु की सेवा सर्वदा उनके लीला रूपों की तथा तदीयता की भावना से करना चाहिए। ऐसी सेवा से भक्त को पहले ब्रह्मबोध रूप अवान्तर फल की प्राप्ति होती है, वह ब्रह्मभूत हो जाता है, फिर उसे रसात्मक मानसी परा (मुख्य) भक्ति की प्राप्ति होती है॥१६॥

पुष्टि भक्ति का फल

भक्तिं लब्ध्वा च विशते कृष्णलीलास्वसंशयम् ।
नातः परतरं किञ्चित् प्राप्यम् अस्तीह कर्हिचित् ॥१७॥

मानसी परा भक्ति प्राप्त होने पर पुष्टि भक्त का निश्चित रूप से प्रभु श्रीकृष्ण की लीलाओं में प्रवेश हो जाता है। उसे भगवत्-लीला का रस मिलने लगता है। मानव जीवन में, इह लोक में इस परमानन्द से बढ़कर कुछ भी, कभी भी उपलब्धि नहीं है॥१७॥

ब्रह्मवाद को जानकर सात्त्विक भक्तों को श्री आचार्यचरण द्वारा सुनिश्चित पुरुषोत्तम व्रजाधिप श्रीकृष्ण का एकनिष्ठ मन से भजन करना चाहिए-

एतद्रूपं समास्थाय श्रीवल्लभसुनिश्चितम् ।
सात्त्विकैर् भगवद्भक्तैः स्थेयं कृत्वा दृढं मनः ॥१८॥

सात्त्विक भगवद् भक्तों को श्रीमद् वल्लभाचार्यचरण द्वारा श्रुति-ब्रह्मसूत्र-श्रीमद् भगवद्गीता, श्रीमद् भागवत आदि शास्त्रों के द्वारा सुनिश्चित पुरुषोत्तम व्रजाधिप श्रीकृष्ण का ही पूर्णनिष्ठा, दृढता से मनोयोगपूर्वक भजन करना चाहिए तथा सदा उन्हीं के आश्रय में स्थित रहना चाहिए॥१८॥

श्रीकृष्ण विरहानन्दानुभवाय विशेषतः ।
श्रुत्युक्तरीत्या सर्वत्र पश्यद्भिः पुरुषोत्तमम् ॥१९॥

किशनगोपाल पुरोहित (अकोला)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

प्रभु श्रीकृष्ण के विरह का विशेष रूप से अनुभव करने के लिए वेदोक्त रीति से सर्वत्र उन्हीं पुरुषोत्तम के दर्शन करना चाहिए॥१९॥

अनया पुष्टिपद्धत्या ससूत्र-श्रुति-गीतया ।
ज्ञात्वानन्दमयत्वं हि भजनीयो व्रजाधिपः ॥२०॥

श्रुति, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता आदि शास्त्रों द्वारा आनन्दमय रूप से निर्धारित तत्त्व को जानकर व्रजाधिप प्रभु श्रीकृष्ण की पुष्टिमार्गीय पद्धति से (भावमयी) सेवा करनी चाहिए॥२०॥

इति स्वरूपसर्वस्वं धारयेद् यः समाहितः ।
स बुद्ध्वानन्दरूपं तु मुच्यते सर्वसंशयात् ॥२१॥

इस प्रकार जो प्रभु के स्वरूप सर्वस्व को एकनिष्ठ भाव से मन में धारण कर लेता है, वह प्रभु के आनन्दरूप को जान लेता है और सभी संशयों से मुक्त हो जाता है॥२१॥

आचार्यश्री का नमनात्मक मंगलाचरण

जयत्याचार्यपादाब्ज-रेणुर् यल्लाभतः स्वयम् ।
तुरीयं पुरुषार्थं हि प्रीतः कृष्णः प्रयच्छति ॥१॥

आचार्यश्री के चरण-कमल की रेणु की जय हो, जिसे प्राप्त करने पर प्रभु श्रीकृष्ण स्वयं प्रसन्न होकर सेवक को चतुर्थ पुरुषार्थरूप मोक्ष प्रदान करते हैं॥१॥

शब्दार्थयोर् नित्यता तद् भक्तिरात्यन्तिकी हरौ ।
उदेति 'श्रीवल्लभे'ति-नामोच्चारणमात्रतः ॥२॥

शब्द और अर्थ नित्य हैं और उनका सम्बन्ध भी नित्य है। 'श्रीवल्लभ' इस नाम के उच्चारण मात्र से श्रीहरि में आत्यन्तिकी (उत्कृष्ट) भक्ति का उदय हो जाता है॥२॥

आनन्दमयतानन्दसन्दोहो यत् प्रवेशतः ।
आनन्दरूपे भवति स वै श्रीवल्लभः प्रभुः ॥३॥

श्रीमती दुर्गा कोठारी, (मुम्बई)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

आनन्दमय श्रीवल्लभ प्रभु आनन्दनिधि हैं जिनके प्रवेश से जीव आनन्द रूप हो जाता है॥३॥

सिद्धिदा यादृशी प्रोक्ता जीवानां सेवना कृता ।
तादृशीं स्वीयशिक्षार्थं दर्शयामास वाक्पतिः ॥४॥

वाक्पति श्रीमद्वल्लभाचार्य ने जैसी भगवत्सेवा को सकल सिद्धि देने वाली बताया है, अपने सेवकों को शिक्षा देने के लिए स्वयं भी वैसी भगवत्सेवा करके दिखलाई है॥४॥

षड्गुणविशिष्ट धर्मी श्रीकृष्ण ही भजनीय हैं

षड्गुणैः सहितो धर्मी कृष्णः सेव्यः परः प्रभुः ।
गुणाश्च भगवद्रूपाः रूपलीलाविभेदतः ॥५॥
तज्ज्ञात्वा सेवना कार्येत्येवंरूपविभेदतः ।
सेवयामास वागीशो बहुरूपाणि वै हरेः ॥६॥

भगवान् श्रीकृष्ण में छह दिव्य गुण (धर्म) सदा रहते हैं। ये छह गुण हैं- ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। भगवान् इन छह गुणों (धर्मों) से युक्त धर्मी हैं। वे ही परम प्रभु श्रीकृष्ण सेव्य हैं, उन्हीं की सेवा करनी चाहिए। रूप और लीला के भेद से ये गुण भी भगवद्-रूप ही हैं। भगवान् के विभिन्न रूपों और लीलाओं को जानकर उनकी सेवा करनी चाहिए। वाक्पति श्रीमद् वल्लभाचार्यजी ने प्रभु के विविध रूपों को जानकर सभी रूपों में उन्हीं श्री हरि की सेवा की है॥६॥

अपने सेव्य श्री ठाकुरजी के स्वरूप में लीला-भेद से श्री गोवर्द्धननाथ प्रभु की ही भावना करना-

गोवर्धनाधीशरूपं मूलरूपानुकारतः ।
शरणीयं च सेव्यं च भक्तिमार्गानुसारतः ॥७॥

श्री गोवर्धननाथ के मूल स्वरूप के अनुरूप पुष्टिभक्तिमार्ग के अनुसार

गो.वा. कांता बेन मोहनलाल पारीख एवं परिवार
(इरानी वाडी, कांदीवली, मुंबई) के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

उन्हीं की शरण लेना तथा उन्हीं प्रभु की सेवा करनी चाहिए ॥७॥

ऐश्वर्यगुणयुक्त नवनीतप्रियजी की भावना

कृष्णः स्वैश्वर्यरूपेण प्रकटो बाललीलया ।
नवनीतादिचौर्येण स सेव्यः तत्प्रभावतः ॥८॥

प्रभु श्रीकृष्ण ने बाललीला करते हुए नवनीत आदि की चोरी के द्वारा अपना ऐश्वर्यगुणवाला स्वरूप प्रकट किया। नवनीतप्रियजी के रूप में वही सेव्य स्वरूप हैं। इसी उत्कृष्ट भाव से उनकी सेवा करनी चाहिए ॥८॥

मथुराधीशजी में वीर्यगुणवाली लीला की भावना

वीर्यरूपेण मथुरां गत्वा भक्ताधिमर्दनम् ।
कृत्वा गतः स्वप्रिययालिङ्गितो भक्ततापहृत् ॥९॥

प्रभु अपना वीर्यगुण प्रकट करते हुए व्रजभक्तों को छोड़कर प्रभु मथुरा पधारे। वहाँ अपनी प्रिया (कुब्जा) को आलिंगित कर उसका ताप दूर किया। वे प्रभु मथुराधीशजी के रूप में सेव्य हैं ॥९॥

यशगुणविशिष्ट श्री विट्ठलनाथजी की भावना

यशोरूपेण भक्तार्तिं हृतवान् स्वप्रयासतः ।
सर्वशक्तियुतः प्रेम्णा स सेव्यो विट्ठलेश्वरः ॥१०॥

प्रभु ने अपने यशगुणविशिष्टरूप से अपने कृपायुक्त प्रयास से भक्तों की वेदना दूर की। वे सर्वशक्तिमान् प्रभु विट्ठलेश्वर के रूप में सेव्य हैं ॥१०॥

श्रीगुणविशिष्ट श्री द्वारिकाधीश प्रभु की भावना

विरहे भावितप्रेम्णा प्रियया द्वारिकास्थितः ।
मार्गतोङ्गीकृतः सेव्यः श्रियया द्वारिकेश्वरः ॥११॥

श्रीगुण विशिष्ट लीला करते हुए प्रभु ने द्वारिकाधीश के रूप में अपने विरह में

सौ. प्रीति सुनीलजी चांडक (सूरत)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

प्रेम से भावित प्रिया (रुक्मिणीजी) को मार्ग में ही अंगीकृत किया। वे श्रीगुणविशिष्ट द्वारिकाधीश के रूप में सेव्य हैं॥११॥

ज्ञानगुणविशिष्ट श्री गोकुलचन्द्रमाजी की भावना

कदाचित् युमुनातीरे ज्ञानरूपेण वेणुना।
प्रियाम् आकारयन् सेव्यः त्रिभङ्गो गोकुलाधिपः ॥१२॥

कभी ज्ञानरूपी वेणु के स्वर के द्वारा अपनी प्रिया (एवं गोपीजन) को यमुनातट पर बुलाया था। उसी लीला के स्वरूप त्रिभंगी श्री गोकुलचन्द्रमाजी के रूप में सेव्य हैं॥१२॥

वैराग्यगुणविशिष्ट श्री गोवर्धनधर (गोकुलनाथजी) की भावना

स्वीयविद्वेषिवैराग्य-लीलयाधारयद् गिरिम्।
तद्रूपेणार्तिहृत्सेव्यः प्रभुः गोवर्धनेश्वरः ॥१३॥

अपने से द्वेष रखने वाले इन्द्र के प्रति वैराग्य भाव से लीला करते हुए प्रभु ने सहज ही गोवर्धन पर्वत को उठाकर शरणागत व्रजजनों के दुःख को हर लिया था। वे प्रभु गोवर्धनधर (गोकुलनाथजी) के रूप में सेव्य हैं॥१३॥

स्वसेव्य प्रभु में शृंगारभावात्मक श्री मदनमोहनजी की भावना

मदनं कामरूपेण स्त्रीभावाद् भावितो हरिः ॥
मोहयन् मूलरूपेणावतीर्णः सेव्य एव सः ॥१४॥

कामदेव को मोहित करने के लिए सुन्दर आकर्षक स्त्रीभाव से भावित श्रीहरि ने मोहित कर लिया था। वे ही प्रभु अपने मूल रूप में अवतरित मदनमोहनजी के रूप में सेव्य हैं॥१४॥

एवंविधानेकलीला-रूपैः तद्भावभाविताः।
सेवयेद् अन्यथा तु स्याद् अपराधौ न तत्फलम् ॥१५॥

मनमोहन राठी, (कटक)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

इस प्रकार प्रभु ने अनेक रूप धारण कर विविध प्रकार की लीलाएँ की हैं। उनकी सेवा उन भावों से युक्त होकर करना चाहिए। यदि उन भावों का ध्यान न करें तो अपराध होता है और सेवा का फल नहीं मिलता।

पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की शृंगार रसात्मकता का निरूपण

कन्दर्पकोटिलावण्यं नत्वा गोपीजनप्रियम्
शृङ्गाररसरूपं हि यादृक् तादृङ् निरूप्यते ॥१॥

करोड़ों कामदेव के सौन्दर्यस्वरूप एवं गोपीजन के प्रिय श्रीकृष्ण को नमस्कार करके उनका जैसा शृङ्गाररस स्वरूप है, वैसा निरूपण किया जा रहा है।

स्वच्छो मरकतश्यामः स्त्रीपुम्भावात्मकः पटुः ।
अनन्यपरतन्त्रश्च रसः 'शृङ्गार' उच्यते ॥२॥

शुद्ध, मरकतमणि के समान श्याम, स्त्री-पुरुष-भावस्वरूप वाला, श्रेष्ठ और अनन्य परतन्त्र हो (जो किसी के परतन्त्र न हो) उस रस को शृङ्गार कहा जाता है।

गाढत्वाद् व्यापकत्वाच्च ब्रह्मत्वात् 'श्याम' उच्यते ।
स्त्रीपुंप्रेमविहारात्मगाथानन्दविभावतः ॥३॥

गहन, व्यापक, ब्रह्म रूप और स्त्री-पुरुष के प्रेम-विहार स्वरूप के आनन्द का विभाव (अलौकिक कारण) होने के कारण उसे 'श्याम' कहा जाता है।

प्रादुर्भवति कृष्णात्मा हृदि भावाङ्कुरात्मकः ।
अनिर्वाच्यानन्दरूपानन्दानुभवसाक्षिकः ॥४॥

अवर्णनीय आनन्दस्वरूपवाले, आनन्द-अनुभव के साक्षी रूप, भावाङ्कुरात्मक श्रीकृष्ण हृदय में प्रादुर्भूत होते हैं।

भावाभासरसाभासौ पोषकौ तस्य सम्मतौ ।
संयोगे विरहश्चापि तस्यावस्थाद्वयं मतम् ॥५॥

भावाभास और रसाभास शृङ्गाररस के पोषक माने गये हैं तथा संयोग और

जमनादासजी गुप्ता पूर्व विधायक (खुजनेर)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

विरह उसकी दो अवस्थाएँ हैं।

अवस्थाद्वयपूर्णो हि स्वकार्यकरणक्षमः ।
भावोद्बोधं विना भावसम्पत्यर्थं तु या कृतिः ॥६॥

भावसम्पत्ति के लिए जो कृति भावोद्बोध के बिना ही अपने कार्य-करण में समर्थ होती है वह अवस्थाद्वय (संयोग और वियोग अवस्था) से पूर्ण होती है।

हास्यस्पर्शादिरूपा हि 'भावाभासः'स उच्यते ।

रसोद्गम क्रिया काचिद् व्याजवाक्यादिसंयुता ।
करोत्या नन्दमन्तर्हि 'रसाभासः'स उच्यते ॥७॥

हास्य स्पर्शादि स्वरूपवाला 'भावाभास' कहलाता है। व्याजवाक्यादि से युक्त जो कोई रसोद्गम की क्रिया जो अन्तःकरण में आनन्द को उत्पन्न करती है उसे 'रसाभास' कहते हैं।

श्रीकृष्णगोपिकाप्रौढविलासकथयोद्गतम् ।
रससंयोगभावं हि श्रीकृष्णे साधयेद् ध्रुवम् ॥८॥

श्रीकृष्ण और गोपिकाओं की प्रौढविलास कथाओं से उत्पन्न रस के संयोग भाव को निश्चित ही श्रीकृष्ण में साधना चाहिए।

ततश्चातितरं वृद्धो निमेषाद्यन्तरायकम् ।
विरहं साधयित्वा च पुष्ट : स्यात् स्वस्वरूपतः ॥९॥

उसके बाद निमेष भर का भी श्रीकृष्ण का विरह असाध्य हो जाता है। इन अन्तरायों (विघ्नों) से अत्यधिक बढ़े हुए विरह को साधकर भावमय स्वस्वरूप पुष्ट होता है।

एवं चेत् पुष्टताम् एति भावात्मा स रसस् तदा ।
श्रीकृष्णभजने योग्यं कुर्याज्जीवं निवेदितम् ॥१०॥

इस प्रकार जो भाव पुष्टता को प्राप्त करता है वही रस है। ऐसे शृंगार रसरूप

श्रीकृष्ण का भजन करना ही निवेदित जीव के लिए सर्वथा उचित है।

आत्मनिवेदनपूर्वक रसात्मक श्रीकृष्ण के भजन से ही कृतार्थता-

कृष्णे निवेदनाज्जीवः कृतकृत्यो भवेद् इह।
अतः सर्वात्मना कुर्याद् विधित्वेन निवेदनम् ॥११॥

श्रीकृष्ण के प्रति निवेदन करने से जीव कृत्यकृत्य होता है अतः सब प्रकार से विधिपूर्वक (आत्म) निवेदन करना चाहिए।

शृङ्गो भावाङ्कुरः प्रोक्तः शृङ्गारस् तद्गतो रसः।
स वै कृष्णात्मको ज्ञेयः श्रुतिवाक्यानुसारतः ॥१२॥

भावाङ्कुर को शृङ्ग कहा गया है और उसके अन्तर्गत जो रस है वह शृङ्गाररस है। श्रुतिवाक्यों (रसो वै सः) के अनुसार उस शृंगार रस को कृष्णात्मक जानना चाहिए।

समर्प्य तत्र सर्वं हि दृढविश्वासतो भजन्।
ऐहिके पारलोके च चिन्तां त्यक्त्वा सुखी भव ॥१३॥

श्रीकृष्ण के प्रति सब कुछ समर्पित करके दृढविश्वास से उनकी सेवा करता हुआ व्यक्ति, इस लोक में तथा परलोक में समस्त चिन्ताओं से मुक्त होकर सुख को प्राप्त करता है।

■

स्व. लक्ष्मीबाई बंसीधरजी नवहाल (वरोरा)
की स्मृति में नवहाल परिवार के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

वर्षोत्सव की भावना

जन्माष्टमी-उत्सव

येन दु:खेन गोपीनां यशोदानन्दयोस् तथा ।
प्रकटोभून् निरोधार्थं तथा मयि कृपां कुरु ॥१॥

निवेदितात्मभावेन महतां कृपया तथा ।
देहि स्वानन्दरूपं स्वदास्यं श्रीपुरुषोत्तम ॥२॥

हरे करुणया कृष्ण ! मदर्थे प्रकटो भव ।
अहं यथा निरोधस्य पदवीं याम्यसंशयम् ॥३॥

इति विज्ञाप्य श्रीकृष्ण-मूर्त्यग्रे प्राञ्जलि: स्थित: ।
यशोदा-नन्द-गो-गोपी-गोप-सङ्घसमन्वितम् ॥४॥

व्रजं भावनया सिद्धं कृत्वा हृदि विभावयेत् ।
स्वार्थं प्रकटितं कृष्णम् आनन्दाकारम् उत्तमम् ॥५॥

तत: सम्पूजयेद् भक्त्या यथालब्धोपचारकै: ।
प्रत्यब्दं कार्यमेवं हि लीलानित्यत्वत: सदा ॥६॥

लोके सर्वं परित्यज्य लीलासिद्धिम् अचीक्लृप: ।
प्रभूपरिकृता दृष्टि: तथा मयि कृपां कुरु ॥२(?)॥

यशोदाजी, नन्दरायजी और गोपियों का दु:ख दूर करने के लिए प्रभो ! आप प्रकट हुए थे। उसी प्रकार नाथ ! मुझ पर भी कृपा कीजिए। मेरे मन का निरोध अपने में करने के लिए प्रकट होइए॥१॥

श्री पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण ! जिन भक्तों ने आत्मभाव से आपको आत्मनिवेदन कर दिया था उन्हें महापुरुषों की कृपा से आपने प्रकट होकर अपने

एडवोकेट अनिल व्यास (खामगाँव)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

स्वरूप का आनन्द प्रदान किया था और सेवा का अवसर प्रदान किया था। प्रभो ! मेरे लिए भी कृपा करके प्रकट होइए तथा मुझे स्वानन्द का दान कीजिए। मुझे भी सेवा करने (दास्य) का आनन्दमय सौभाग्य प्रदान कीजिए॥२॥

हे प्रभु श्रीकृष्ण ! दया करके मेरे लिए प्रकट होइए जिससे कि मैं निश्चित रूप से निरोध पदवी को प्राप्त होऊँगा अर्थात् आपके दर्शन और सेवा में मेरा मन पूरी तरह से आपमें तल्लीन हो जाएगा, इसमें कोई संशय नहीं है॥३॥

इस प्रकार प्रार्थना करके हाथ जोड़कर प्रभु के सम्मुख बैठ जाए। इस उत्सव में यशोदा, नन्द, गोप, गोपी, गाय आदि का समूह भी तैयार हो। यह सब व्रज की भावना से सिद्ध करे तथा हृदय में भी व्रज की भावना करे। भगवान् श्रीकृष्ण निजजनों के लिए उत्तम आनन्दाकार में प्रकट हुए थे॥४-५॥

उन प्रभु का सम्यक् पूजन (सेवा) भक्तिभाव से, प्रेमपूर्वक उपलब्ध साधन-सामग्री से करे।

प्रभु की लीला तो नित्य है अतः प्रतिवर्ष इसी प्रकार श्री प्रभु का प्राकट्य उत्सव जन्माष्टमी पर्व मनाना चाहिए॥६॥

प्रभो ! आपने सब छोड़कर लोक में लीला सिद्ध की थी तथा कृपा पूर्ण दृष्टि सभी पर की थी। प्रभो ! वैसी ही कृपा मुझ पर भी कीजिए॥७॥ (यह श्लोक विवृत्तिकार द्वारा रचित है।)

वामनजयन्ती

यथा स्वदासवंशीय-बलेर् अर्थार्थसिद्धये।
अङ्गीकृतं तत् सर्वस्वं तथैव कुरु मे प्रभो॥१॥

अपने भक्त (दास) प्रहलाद के वंश में उत्पन्न बलि के मनोरथ की सिद्धि के लिए उसका सर्वस्व स्वीकार किया था। प्रभो ! वैसी ही कृपा मुझ पर भी कीजिए॥१॥

श्रीमती कमला डागा, (जतीपुरा)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

विजयादशमी

प्रतिबन्धासुरं दूरीकृत्य भक्तमनोरथः ।
पूरितः स्वप्रियां नीत्वा तथा मेऽस्तु मनोरथ : ॥१॥
श्रीकृष्ण पूरयान्तःस्थासुरभावविनाशनात् ।
दर्शनं देहि रासस्थ-स्वप्रियासङ्गतं स्वकम् ॥२॥

प्रभो ! असुरों के द्वारा किये गये प्रतिबन्ध (बाधाओं) को दूर कर आपने अपने भक्तों का मनोरथ पूर्ण किया था और अपनी प्रिया सीताजी को ले आये थे। इसी प्रकार मेरा मनोरथ भी पूर्ण कीजिए॥१॥

रसप्रदाता प्रभु श्रीकृष्ण ! मेरे हृदय में जो आसुर भाव हैं उनका विनाश कर रास में स्थित प्रियाजी के साथ दर्शन दीजिए॥२॥

दीपोत्सव

यथा श्रीमन्नन्दकृतदीपावलिविधानकम्
लौकिकं स्वीकृतं स्वात्मप्रवेशार्थं व्रजेश्वर ! ॥१॥
कृपया स्वीयतासिद्ध्यै पूर्वविस्मारणेन हि ।
तथा दीपादिकं सर्वम् अङ्गीकुरु मदर्पितम् ॥२॥

हे व्रजाधिप ! जिस प्रकार आपने नन्दरायजी द्वारा किये गये दीपावली के लौकिक विधान को, लौकिक परम्पराओं के विधान को अपनी आत्मा में उन भक्तों को प्रवेश देने के लिए स्वीकार किया था, वैसे ही मेरे पूर्वकृत कर्मों को भुलाकर अपनी स्वीयता (तू मेरा है इस भाव) की सिद्धि के लिए मेरे द्वारा समर्पित दीप आदि सर्व सामग्री को अंगीकार कीजिए॥१-२॥

अन्नकूट

स्वशक्तिहृदयाद्रूपं स्वं यथा प्रकटीकृतम् ।
तथैव प्रकटीभूय गिरौ पूजां ग्रहाण मे ॥१॥

लक्ष्मीनारायणजी सादानी (गुवाहाटी)
के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

गिरिच्छत्रेण दृक्पात-चामरैः स्नेहवारिभिः ।
केवलस्वीयताराज्येऽभ्यषिञ्चद् व्रजमीश्वरः ॥२॥

हे व्रजेश्वर ! जिस प्रकार आत्मशक्ति अपने हृदय से प्रकट कर अपने को गिरिराज गोवर्धन का रूप धारण कर आपने व्रजवासियों की पूजा ग्रहण की थी, उसी प्रकार पुनः पर्वत से प्रकट होकर मेरी पूजा भी ग्रहण कीजिए॥१॥

आपने अपने एकछत्र राज्य में गिरि गोवर्धन को छत्र के रूप में धारण कर लिया था, उस प्रेम राज्य में प्रेमपूर्ण पलकों का झपकना ही मानो चँवर डुलाना हो रहा था, आपने स्नेह की वर्षा करके सम्पूर्ण व्रज को रस से अभिषिक्त कर दिया था। हे व्रजेश्वर ! मुझ पर भी ऐसी प्रेम-वृष्टि कर दीजिए॥२॥

अन्नकूट भोग समर्पण करते समय प्रार्थना करें

त्वदाज्ञप्तस्वयागात्मान्नकूटस्य समर्पणात् ।
गोवर्धनाचलाधीश ! प्रसीद सततं मयि ॥१॥

यथेन्द्रयागभङ्गस्य सयागस्य च कारणात् ।
नन्दादीनाम् अनन्यत्वं कृतं मयि तथा कुरु ॥२॥

हे गोवर्द्धननाथ ! आपकी आज्ञा से पुरुषोत्तम याग रूपी अन्नकूट समर्पित कर रहा हूँ। आप सदा मुझ पर प्रसन्न रहें॥१॥

जिस प्रकार आपने इन्द्रयाग भंग करवाकर नन्दादि गोपों के द्वारा अन्नकूट रूपी यज्ञ करवा कर उनका अन्याश्रय दूर कर उन्हें अपना अनन्य (एकनिष्ठ) भक्त बना लिया था, मुझ पर भी वैसी ही कृपा कीजिए॥२॥

प्रबोधिनी

क्रीडता योगनिद्राङ्गीकारेण रससागरे ।
तत्रस्थाङ्गीकृता मासैः पुमर्थप्रतिपादकैः ॥१॥

तथाधुनोत्तिष्ठ कृष्ण ! याहि स्वात्मनिवेदितान् ।
तदङ्गीकृतिमात्रार्थं जगद्रसमयं सृज ॥२२॥

हे भगवान् श्रीकृष्ण ! परम पुरुषार्थ प्रतिपादक महीनों में योगनिन्द्रा अंगीकार कर आप रससागर में क्रीड़ा करते हैं। प्रभो ! अब योगनिन्द्रा त्याग कर उठिए। अपने निज भक्तों के द्वारा समर्पित सामग्री को अंगीकार कर सम्पूर्ण जगत् को रसमय बना दीजिए॥१-२॥

मार्गशिर

स्वनाथप्रापिकां देवीं सन्तुष्टां कृष्णरूपिणीम् ।
भावयित्वात्मभजनीये रूपे पूजयेत् च ताम् ॥१॥

संतुष्ट होने पर जो कृष्णरूपिणी देवी हमें अपने नाथ श्रीकृष्ण की प्राप्ति करा देती है। वे देवी अपनी आत्मा के रूप में भजनीय हैं। उनकी पूजा इसी रूप में करता हूँ॥१॥

वसन्तोत्सव

कामेपि प्रमदाभावकरणं कामसुन्दरम् ।
तदर्थं सेवयेत् कृष्णं कैशोरे वयसि स्थितम् ॥१॥

एवं संसेवितः काम पञ्चम्यां कामदोसि यत् ।
गोपीनां कृपया देहि तथा मे काममद्भुतम् ॥२॥

काम भी प्रमदा भाव (प्रेमयुक्त स्त्रीभाव) प्रदान करता है। उस गोपी भाव की प्राप्ति के लिए किशोरवयवाले कामदेव के समान सुन्दर श्रीकृष्ण की सेवा करे। गोपियों ने कामपंचमी (वसन्त पंचमी) को इसी मनोरथ की पूर्ति के लिए आपकी सेवा अच्छी तरह से की थी। उन्हें आपने उत्कृष्ट काम (दिव्यकृष्णप्रेम) प्रदान किया। उसी प्रकार कृपा करके वह अद्भुत अलौकिक काम मुझे भी प्रदान कीजिएगा॥१-२॥

दोलोत्सव

प्रियोरुरूप-भावात्मस्तम्भयुग्म-समन्विताम् ।
श्रीकृष्णस्मृतिसौख्यां यद्दोलाम् आरोपयाम्यहम् ॥१॥

प्रियाबाहुलताभावात्मिकायाम् अनुरागतः ।
दोलायां दोलयामि त्वां प्रसीद पुरुषोत्तम ! ॥२॥

हे प्रभो ! मैं आपको उस दोल (झूले) में विराजमान करता हूँ जिसके दोनों खंभें प्रियाजी की लम्बी सुन्दर भुजा के समान हैं। इस दोल में विराजने पर आपको स्वामिनीजी की स्मृति का सुख मिलेगा।

हे पुरुषोत्तम ! मैं आपको उस झूले में प्रेमपूर्वक पधराता हूँ जिसके डोर स्वामिनीजी की बाहुलता के भाव वाली हैं। इस झूले में झूल कर आप प्रसन्न होइए॥१-२॥

रामनवमी

श्रीकृष्णहास्यरूपेण प्रमदाभावकारकः ।
तदर्थं प्रकटाय त्वां भजामि रघुनायक ! ॥१॥

यथैवाग्निकुमाराणां भावम् उत्पाद्य दत्तवान् ।
वरं मे कृपया देहि तथा देव नमोऽस्तु ते ॥२॥

हे रघुनायक प्रभु श्रीराम ! आप प्रभु श्रीकृष्ण के हास्यरूप हैं। आपके दर्शन करने से प्रमदा भाव (स्त्रियोचित्त प्रेमभाव) प्रकट हो जाता है। मुझ में भी वह प्रमदा भाव प्रकट हो इस मनोरथ से मैं आपकी सेवा करता हूँ॥१॥

प्रभो ! आपने अग्निकुमारों को दर्शन देकर उनमें प्रमदा भाव जगा दिया था और फिर उन्हें वरदान भी दे दिया था कि कृष्णावतार में तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करूँगा। मेरे मन में भी आपके प्रति वह अलौकिक प्रमदा भाव (प्रेम भाव) जगा दीजिए और मेरे भी मनोरथ को पूरा करने की कृपा कीजिए। देव ! मैं आपको नमन करता हूँ॥२॥

श्रीमत्प्रभूत्सव

श्रीकृष्णान्तरकृष्णास्यस्वरूपविहारकृत् ।
तदर्थप्रकटः स्वीयदास्ये माम् अनुभावय ॥१॥

आचार्यचरण आप प्रभु श्रीकृष्ण के हृदय में विराजते हैं। आप उन्हीं के मुखारविन्द स्वरूप में विहार करते हैं। आपका प्राकट्य प्रभु के कार्य के लिए ही हुआ है। अपने सेवक के रूप में मुझे स्वीकारिए॥

चन्दनयात्रा

कुच-कुङ्कुम-गन्धाढ्यम् अङ्गरागमपि प्रियम् ।
श्रीकृष्ण तापशान्त्यर्थम् अङ्गीकुरु मदर्पितम् ॥१॥

स्वामिनीजी के कुचों की केसर की गन्ध से युक्त आपश्री का प्रिय (चन्दन का) अंगराग प्रभो श्रीकृष्ण ! ताप शान्त करने के लिए समर्पित है, कृपा-पूर्वक इसे अंगीकार कीजिए।

नृसिंहजयन्ती

ग्रीवारूपं श्रीनृसिंहं स्वभक्त्यतिशयाद् यथा ।
प्रकटीकृतवान् कृष्ण ! तां भक्तिं वितरस्व में ॥१॥

अपने भक्त प्रहलाद की अतिशय भक्ति के कारण आपने स्वयं को ग्रीवारूप नृसिंह के स्वरूप में प्रकट किया। प्रभो श्रीकृष्ण ! वैसी उत्कट भक्ति का दान मुझे दीजिए॥

ज्येष्ठाभिषेक

प्रियारतिविहारोत्थ-श्रमवारि-सुगन्धिना ।
शृङ्गाररसरूपात्म-यामुनब्रह्मवारिणा ॥१॥
स्वरूपरसदानार्थं तापानन्तरभावनात् ।
प्रियाङ्गरसनीरेण स्वभिषिक्तो भव प्रभो ॥२॥
स्नातस् तद्रसदानार्थं स्वसृष्टिं कारणात्मिकाम् ।
सृष्ट्वा वितर सत्क्रीड़ां तद्दास्ये स्वीकुरुष्व माम् ॥३॥

प्रियाजी के साथ रति-विहार के कारण प्रकट हुए श्रमवारि की सुगंध से युक्त

शृंगाररस रूपात्मक यमुनाजी के पवित्र जल से, प्रियाजी के अंगों के रस रूप जल से ताप के बाद स्वरूप-रस का दान करने के लिए प्रभो ! आप अभिसिक्त होइए। स्नान के उपरान्त कारणात्मिका स्वसृष्टि की रचना कीजिए। उसमें दिव्य क्रीड़ा (लीला) करते हुए रसदान कीजिए। इस क्रीडा में प्रभो मेरी दासता स्वीकार कीजिए॥१-३॥

रथोत्सव

मनोरथात्मकरथे रथात्मात्मन् हरे मम ।
श्रीकृष्णस्योपवेशार्थम् अधिवासं कुरु प्रभो ॥१॥

मनोरथात्मकः कृष्ण ! कल्पितोयं रथस् तव ।
पूरयात्रोपसंविश्य गोपीवन्मन्मनोरथम् ॥२॥

श्रीकृष्ण ! रथमारुह्य सरामेण सुभद्रया ।
पाहि मां भक्तिदानेन दुःखसंसारसागरात् ॥३॥

हे रथ की आत्मारूप आत्मस्वरूप श्री हरे ! अपने प्रभु श्रीकृष्ण के विराजने के लिए मैंने मनोरथ रूपी रथ तैयार किया है। इसमें विराजिए॥१॥

हे कृष्ण ! मैंने आपके विराजने के लिए मनोरथ रूपी रथ अपनी कल्पना में बनाया है। आप जिस प्रकार गोपियों के मन रूपी रथ में विराज कर उनका मनोरथ पूर्ण करते हैं उसी प्रकार मेरे मनोरथरूपी रथ में विराज कर मेरा भी मनोरथ पूर्ण कीजिए॥२॥

हे प्रभु श्रीकृष्ण इस रथ पर बलरामजी और सुभद्रा के साथ विराज कर भक्ति का दान देकर संसार-सागर में मुझ डूबते हुए की रक्षा कीजिए॥३॥

हिन्दोलोत्सव

अक्षरे लीनतासिद्धयै भृशं लक्ष्मीर्यथाकरोत् ।
दोलिकारोहणं स्वप्रियकर्म गायती तथा ॥१॥

प्रतिमुखे मुखान्दोलैर् अक्षराद् अभयं कुरु ॥

"मम कृतिरियं न मूलग्रन्थकृताम्" के अनुसार डेढ़ श्लोक विवृतकारकी कृति है। मूल ग्रंथकार गोपीनाथजी की नहीं हैं।

पवित्रोत्सव

या कृता वार्षिकी सेवा सा मूलफलदा मता ।
प्रत्यहं सूत्ररूपेण सैकीभूतानुभावनात् ॥१॥

पवित्रं तज्ज्ञापकं हि प्रेषितं हरिणा ततः ।
अतस् तदारोपणं तु श्रीकृष्णे सन्मतं सदा ॥२॥

तदारोपात् भक्तिभावा मूले सर्वे समर्पिताः ।
त्वत्प्रेषितं पवित्रं हि मूलसेवाफलात्मकम् ॥३॥

समर्पयामि तत्प्रीतः कृपयाङ्गीकुरु प्रभो ।
तत्समर्पणतो भाव-सेवायाः फलरूपता ॥४॥

पूरे एक वर्ष तक जो मैंने भगवत्सेवा की है वह मूल फल (मूल स्वरूप श्रीकृष्ण की प्रसन्नता) प्रदान करने वाली मानी गई है। वह सेवा प्रतिदिन पवित्रा के एक-एक धागे के रूप में एकत्रित होकर फलप्रदायिनी हो रही है॥१॥

श्री हरि ने उसी को पवित्रा नाम देकर भेजा है अतः उसका आरोपण प्रभु श्रीकृष्ण में सदा सन्मत है॥२॥

आपके द्वारा प्रेषित ये पवित्र धागे मूल सेवा के फलात्मक हैं, उनके आरोपण से मूल स्वरूप में जो मेरा भक्ति भाव है, वह सम्पूर्ण रूप से समर्पित है॥३॥

प्रभो ! समर्पित भक्ति भाव रूपी पवित्रा को आप प्रेमपूर्वक अंगीकार कीजिए। इसके समर्पण से मेरी भावमयी भगवत्सेवा को फलरूपता प्राप्त हो॥४॥

रक्षाबन्धन

पूतनायां संस्थितायां गोपिकाभिर्यथा कृतम् ।
तथा रक्षाबन्धनं प्रेम्णाङ्गीकुरु कृतं मया ॥१॥

पूतना के शरीर पर जब आप स्थित थे तब गोपिकाओं ने आपको रक्षासूत्र बाँधे थे उसी प्रकार मेरे द्वारा प्रस्तुत रक्षाबन्धन आप प्रेमपूर्वक अंगीकार कीजिए॥१॥

उत्सवों की फलरूपता तथा उसके लिए आचार्यश्री के आश्रय की आवश्यकता-

प्रत्यब्दमेवं करणाद् उत्सवानां विधानतः ।
श्रीमदाचार्यमार्गोक्तसेवायाः फलरूपता ॥१॥

सा काय-वाङ्मनोभिश्च दृढ़प्रेम्णा कृता सती ।
दृढ़मूली लतावच्च वृद्धा कृष्णं फलिष्यति ॥२॥

व्यस्तैस्तैः सुदृढैर् हीनमध्यमोत्तम-भेदतः ।
कृता जीवैः स्वमार्गस्थैः फलिष्यत्युत्तरोत्तरम् ॥३॥

पितृपादरजो जातु ह्युत्तमैर् विस्मृतं न यैः ।
तेषामेव हि मार्गोयं फलिष्यति न चान्यथा ॥४॥

प्रतिवर्ष विभिन्न उत्सव विधानपूर्वक करने से श्रीमद् आचार्य महाप्रभुजी के पुष्टिमार्ग में भगवत्सेवा की फलरूपता होती है॥१॥

भगवत्सेवा जब शरीर-वाणी और मन लगाकर प्रगाढ-सुदृढ़ प्रेम से की जाती है तब वह दृढमूल होकर लता के समान बढ़ती है और उसमें कृष्णरूपीफल लगता है। (पुष्टिमार्ग में प्रभु श्रीकृष्ण को ही फलरूप माना जाता है)॥२॥

पुष्टिमार्ग में स्थित जीव के द्वारा की जाने वाली सेवा सुदृढ प्रेम के आधार पर हीन, मध्यम और उत्तम भेद वाली होती है और क्रमशः उत्तरोत्तर फल प्रदान करती है॥३॥

जो उत्तम पुष्टिमार्गीय भक्त पितृचरण श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभुजी के चरण-रज को विस्मृत नहीं करते हैं। उनके लिए ही यह सेवामार्ग, पुष्टिमार्ग फलदायक होता है, उन्हें ही श्रीकृष्णरूपीफल प्राप्त होता है अन्यों को वह फल प्राप्त नहीं होता॥४॥

विरहावस्था में की जाने वाली प्रार्थना

श्रीवल्लभो जयति भक्तहितैकबन्धुः ।
आविश्चकार तनयं किल विट्ठलं यः ।
तस्यैव पादयुगलं सततं नमामि ।
प्रेम्णा तदस्तु हृदये मम सर्वदैव ॥१॥

श्रीवल्लभाचार्यमार्गे स्मरणात् सेवनाद् हरेः ।
तत्कथाश्रवणात् चापि न कालो बाधते क्वचित् ॥२॥

वैराग्य-प्रेमयोगेन स्मरणादित्रिकात् पुनः ।
प्रसीदति हरिः शीघ्रं कालश्चानुगुणो भवेत् ॥३॥

व्रजे मधुवने चापि द्वारकायां तथैव च ।
गोपीषु कुब्जादिषु च रुक्मिण्यादिषु या कृता ॥४॥

प्रकटानन्दरूपेण स्वकीया रसरूपता ।
प्रकटीकृत्य कृपया तां चेत् कारयते मयि ॥५॥

तदा निरोधः सुदृढो जायते नान्यथा क्वचित् ।
निरोधेच्छुभिरेतावदेव प्रार्थ्यं हरौ ततः ॥६॥

अक्रूरे श्रुतदेवे च विदुरेऽथोद्धवे च या ।
कृता दासार्पितकृपा तां कृपां वितर प्रभो !॥७॥

श्रीमदाचार्यपादाब्ज-रेणोर् न स्मरणं त्यजेत् ।
तत्त्यागे महती हानिर् मानुष्यं निष्फलं भवेत् ॥८॥

भक्तों के एकमात्र हितैषी-बन्धु श्रीमद् वल्लभाचार्य की जय हो, जिनके श्री विट्ठलनाथजी जैसे पुत्र हैं। मैं उन श्रीमहाप्रभुजी के चरणों में सतत प्रेमपूर्वक नमन करता हूँ। वे सदैव मेरे हृदय में स्थित हों ॥१॥

श्रीमद्वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में श्रीहरि के स्मरण, सेवा और उनकी कथा के श्रवण से कलिकाल जैसे कठिन काल भी कभी बाधक नहीं बनता ॥२॥

वैराग्य और प्रेमपूर्वक श्रीहरि का स्मरण, सेवा और कथा करने से श्री हरि शीघ्र प्रसन्न होते हैं और विपरीत गुणवाला काल भी बाधक न रहकर अनुकूल गुणवाला बन जाता है॥३॥

जैसे ब्रज में गोपियों में, मथुरा में कुब्जा में और द्वारिका में रुक्मिणी आदि रानियों में अपनी रसरूपता प्रदान कर उनमें स्वरूपानन्द प्रकट किया, कृपा करके वैसी ही कृपा मुझ पर कीजिए॥४-५॥

जब आप कृपा करके अपनी रसरूपता प्रदान करते हैं तभी भक्त का मन पूरी तरह से आपमें लगता है, उसका सुदृढ निरोध आप में होता है अन्यथा सुदृढ निरोध नहीं होता। इसलिए प्रभु में निरोध चाहने वाले भक्तों को प्रभु से यही प्रार्थना करनी चाहिए॥६॥

प्रभो ! आपने जिस प्रकार अक्रूर, श्रुतदेव, विदुर और उद्धव जैसे समर्पित दासों पर कृपा की थी, उसी प्रकार मुझ पर भी कृपा कीजिए॥७॥

श्रीमदाचार्य के चरणकमलों की रेणु (पराग, धूलि) का स्मरण कभी न छोड़े, उसका स्मरण छोड़ने से बड़ी हानि होती है। मनुष्य-जन्म ही निष्फल हो जाता है॥८॥

■

अतश्चिन्ता न कर्त्तव्या भवद्भिः कृष्णसात्कृतैः।
श्रीगोकुलजीवनः सर्वं भद्रमेव करिष्यति ॥

विज्ञप्ति-११

जिन्होने प्रभु श्रीकृष्णमय जीवन बना लिया है, जिन्होंने गोकुल के जीवन श्रीकृष्ण के अधीन अपने जीवन-प्राण बना प्रभु को ही बना लिया है वे किसी प्रकार की चिन्ता न करें। प्रभु सब मंगल ही करेंगे।

श्रीगोपीनाथजी के पद्य

(श्लोक १ से २३ तक का भावानुवाद पहले दिया जा चुका है)

गोपिकावद् विप्रयोगे कालक्षेपाय सर्वथा ।
कृष्णमूर्तिं प्रियां कृत्वा भजेत्तत्तत्स्वभावतः ॥१॥

भावात्मविप्रयोगेऽपि न स्थातुं शक्यते यतः ।
अतः स्वहृद्गतैः भावैः भूषयेत्तं मनोमयम् ॥२॥

शब्दार्थयोर्नित्यतावद् भक्तिरात्यन्तिकी हरौ ।
उदेति श्रीवल्लभेति नामोच्चारणमात्रतः ॥३॥

स्वार्थप्रकटसेवाख्यमार्गे श्रीवल्लभ प्रभोः ।
अङ्गीकृतस्य मे भोज्यं स्वास्ये कुरु हुताशनः ॥४॥

सौन्दर्यं निजहृद्गतं प्रकटितं स्त्रीगूढ़भावात्मकं,
पुंरूपंच पुनस्तदन्तरगतं प्रावीविशत् स्वप्रिये ॥५॥

संश्लिष्टावुभयोर्बभौ रसमयः कृष्णो हि तत्साक्षिकम् ।
रूपं तत्त्रितयात्मकं परमभिध्येयं सदा वल्लभम् ॥५॥

पयःपत्रादिमात्रेण पूजितो यः परं पदम् ।
प्रागेव दिशति प्रीतः स कृष्णः शरणं मम ॥६॥

स्नेहात्मगंधतैलेन प्रियागन्धातिचारुणा ।
अभ्यक्तो मङ्गलस्नानं कुरु गोकुलनायक ॥७॥

दिवा त्वद्वनगमनस्मरणात्तापभावतः ।
प्रियास्पर्शोष्णनीरेण स्नातो भव व्रजाधिप ॥८॥

स्नानार्द्रतानिवृत्यर्थं प्रोञ्छिताङ्गविभो मम ।
दूरीकुरुष्व गोपीश कृपया लौकिकार्द्रताम् ॥९॥

प्रियाङ्गसङ्गसम्बन्धिगन्धसम्बन्धतो भवेत् ।
कदाचित्कस्यचिद् भावो ह्यतः स्नानं समाचार ॥१०॥

भावात्मकतया क्लृप्तस्वोत्तरीयात्मकामासने ।
सिंहासने गोकुलेश कृपयोपविश प्रभो ॥११॥

उदेति सविता नाथ प्रियया सह जागृहि ।
अङ्गीकुरुष्व मत्सेवां स्वकीयत्वेन मां वृणु ॥१२॥

प्रसीद पूजितो भक्त्या तुलस्याः प्रियगन्धया ।
निःकिञ्चनाधीश नान्यत् कर्तुं शक्नोमि सर्वथा ॥१३॥

मुखाब्जमकरन्दाप्तिलोभेन रसभावतः ।
पर्युपासितचित्तानि व्रजरत्नानि तानि मे ॥१४॥

कुसुमान्यर्पितानीश प्रसीद मयि सन्ततम् ।
कृपासंहृष्टदृग्वृष्ट्या तदङ्गीकृतिशोभिनः ॥१५॥

स्वरूपरसदानार्थं निष्पीड्यब्रह्मविद्यया ।
यदुच्छिष्टं मे ददासि कृतार्थोऽस्मि ततः प्रभो ॥१६॥

प्रियासंकेतकुञ्जीय वृक्षमूलेषु पल्लवैः ।
कृतेषु भावतल्पेषु क्रीडन् गोचारणं कुरु ॥१७॥

प्रिया नखात्मकादर्शे विलोक्य वदनाम्बुजम् ।
व्रजाधीश प्रमुदितः कृपया मां विलोकय ॥१८॥

भावात्मकास्मद्हृत्पर्यङ्के शेषरूपके ।
रमस्व राधया कृष्ण शयानो रसभावतः ॥१९॥

यथा स्वान्तस्थबालानां कृतार्थत्वाय सर्वदा ।
स्वोच्छिष्टं कृपया दत्तं हरे देहि तथैव मे ॥२०॥

ताम्बूलचर्वितमिव मुख्योच्छिष्टं व्रजाधिप ।
गृह्णामि कृपया दत्तमस्तु मे फलितं तथा ॥२१॥

त्वदाज्ञप्तस्वयागात्मान्नकूटस्य समर्पणात् ।
गोवर्धनाचलाधीश प्रसीद सततं मयि ॥२२॥

यथेन्द्रयागभङ्गस्य स्वयागस्य च कारणात् ।
नन्दादीनामनन्यत्वं कृतं मयि तथा कुरु ॥२३॥

समुल्लसित कुंकुमच्छुरित पुष्पमालां यदा
ददासि हसिता सती सखि कृपाकटाक्षैर्मुदा ।

समीक्षसि यदा वदिष्यसि मुदा तदाहं तदात्मता-
मपि हि मुक्तितोऽप्यधिकतुच्छमुक्तिं ब्रुवे ॥२४॥

हे सखि ! जिस समय आप हँसती हुई, केसर से सनी सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की माला मुझे देती हैं, और कृपायुक्त कटाक्ष से जब निहारती हैं, और जब आप मुझसे वार्तालाप करेंगी, उस समय मैं उस तदात्मता को मुक्ति से भी अधिक मानूँगी, तब मैं मुक्ति को तुच्छ कहूँगी ॥२४॥

यदा सखि रतिश्रुतिप्रथितबन्धरीत्या रमन्त्यति-
श्रमजशीकरं स्मरसि मां समीक्ष्य प्रियं ॥
तदा व्यजनवीजनार्थमपि चेन्मे पुण्यगम् ।
सुरेशसदनं न वा भवतु मोक्ष एष स्फुटम् ॥२५॥

हे सखि ! रसशास्त्र में श्रुत जो प्रसिद्धबन्ध की रीति है, तदनुसार रमण करती हुई अत्यन्त श्रम के कारण उत्पन्न प्रिय स्वेदबिन्दुओं को देखकर जब मुझे याद करती हो तब आपके उन श्रमबिन्दुओं को पंखे की हवा से दूर करने का यदि मेरा पुण्य सौभाग्य हो तो मुझे स्वर्ग की भी इच्छा नहीं होती है। मुझे तो यही मोक्ष लगता है ॥२५॥

न मे कस्यावीप्सा त्रिजगति वरीवर्त्यतिपरं -
त्विदं त्येकं तिष्ठत्यति मम मनस्यालि सततम् ॥
चिरप्रार्थ्यं यत्स्वं व्रजपति सुतस्तत्प्रियतमा ।
मुदा राधा चोभौ मत्कृतनिकुंजेषु रमणम् ॥२६॥

हे सखि ! मुझे तीनों लोकों में किसी बात की कोई इच्छा नहीं है, किन्तु मेरे मन में एक इच्छा सदा बनी रहती है कि चिरकाल से चाहने योग्य नन्दसुत की आप प्रियतमा हो अतः आप और आपके प्रियतम माधव निजदास द्वारा निर्मित निकुंजों में रमण करें। बस यही मेरी एकमात्र मनोभिलाषा है।

॥ इति श्रीगोपीनाथ प्रभुचरणां पद्यानि ॥

(ये श्लोक एक पुस्तक से खोजकर लिये गये हैं। इसके कुछ श्लोकों से मेरे मन में सन्तोष नहीं है फिर भी ये श्लोक दुर्लभ हैं तथा अति सुन्दर हैं तथा इनका मुद्रण वैष्णवों के लिए फलप्रद होगा इसलिए इनका प्रकाशन किया गया है। इसमें विद्यमान जो भी अशुद्धियाँ हैं, उन्हें सम्प्रदाय के विद्वान्, प्राचीन पुस्तक से खोज कर मुझे सूचित करेंगे, यही प्रार्थना है।

-गो. शरद (मांडवी)

आचार्य श्रीगोपीनाथजीप्रभुचरण का स्तवन

रचयिता- वैकुण्ठलाल शंकरलाल भगत, भरुच

(परम भगवदीय श्रीवैकुण्ठभाई भगत ने अष्टोत्तरशत नामरत्नों से श्री गोपीनाथजीप्रभुचरण - स्तवनरूपी सुन्दर रत्नमाला गूँथी है। इससे पाठकों को श्रीगोपीनाथजी प्रभुचरण के जीवन-चरित्र की रूपरेखा से परिचय हो जावेगा एवं आपश्री के स्वरूप में भाव की वृद्धि होगी।)

आश्विने कृष्णपक्षे तु द्वादश्यां वल्लभगृहे ।
अडेले गोपीनाथस्य प्राकट्यं मंगलप्रदम् ॥१॥

आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की द्वादशी के दिन श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभु के घर अडेल में श्रीगोपीनाथजी का मंगलप्रद प्राकट्य हुआ।

श्रीमद्वल्लभवंशे तु श्रीपुरुषोत्तमः स्वयम् ।
स्वाभिधानसार्थकता स्वकीयाचार्यः वस्तुतः ॥२॥

श्रीमद् वल्लभाचार्य के वंश में अपना नाम सार्थक करनेवाले वस्तुतः पुरुषोत्तम स्वरूप ही हमारे अपने आचार्य श्री गोपीनाथजी हैं॥२॥

सर्वजनसुखदाता स्वकीयभाग्यवर्धनः ।
वल्लभज्येष्ठपुत्रश्च बलदेवरूपस्तथा ॥३॥

सभी निजजनों को सुख देने वाले, निजजनों के भाग्य की अभिवृद्धि करने वाले, श्री वल्लभाचार्यजी के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथजी श्रीबलदेवजी स्वरूप हैं॥३॥

श्रीवल्लभज्ञानत्यागप्रभावसुप्रतिकृतिः ।
महालक्ष्मीक्रोडलालितो दैव्यानंदप्रदायकः ॥४॥

श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के ज्ञान, त्याग एवं प्रभाव आदि गुणों की शुभ प्रतिकृति आपश्री में (श्रीगोपीनाथजी में) दृष्टिगत होती है। आपका लालन-पालन श्रीमहालक्ष्मी बहूजी की गोद में हुआ एवं आप दैवी जीवों को आनंद प्रदान करने वाले हैं॥४॥

अडेलयशकर्ता च श्रीअडेलसनाथकृत् ।
अडेले मोदप्राकट्यश्चरणाटे मुदाकरः ॥५॥

आपश्री श्री अडेल के यश को बढ़ाने वाले तथा श्री अड़ेल को सनाथ करने वाले हैं। अड़ेल में जो आनंद प्रकटित हुआ वह आनन्द चरणाट में भी आनंद कराने वाली वृष्टि के रूप में बरसा। इससे सभी को प्रसन्नता हुई।

श्रीवेदप्रतिपादितपुष्टिमार्गप्रचारकृत् ।
मासाश्विनधन्यकर्ता विद्याध्ययनतत्परः ॥६॥

आपश्री वेदों में प्रतिपादित पुष्टिमार्ग का प्रचार करने वाले, अश्विन मास को धन्य करने वाले तथा विद्या-अध्ययन में तत्पर रहने वाले हैं।

स्वाध्यायपरिनिष्ठितः सेवा-स्मरण-उत्सुकः ।
श्रीशांकरपीठाचार्यविद्यागुरुश्रीमाधवः ॥७॥

श्रीशंकराचार्य पीठ के विद्वान् आचार्य श्रीमाधव सरस्वती आपके विद्यागुरु थे। स्वाध्याय में आपकी परम निष्ठा थी और आप भगवत्-सेवा एवं स्मरण के लिये सदा उत्सुक रहते थे।

अतिदीर्घप्रयासेन-अणुभाष्यादिपाठकः ।
द्वारकाधीशस्वरूपे तु परम् अनुरागयुत् ॥८॥

आपश्री बहुत लम्बे समय तक प्रयत्नपूर्वक अणुभाष्य इत्यादि आकर ग्रन्थों का अध्ययन करते रहे। श्रीद्वारकाधीश प्रभु के स्वरूप में आप अत्यन्त अनुरागयुक्त हैं॥८॥

शास्त्रआज्ञापालकश्च शीघ्राशुकविरुत्तमः ।
सेवारससंयुतश्च संयमयुतजीवनम् ॥९॥

आपश्री शास्त्रों की आज्ञाओं का पालन करनेवाले एवं तत्काल काव्य रचने वाले आशुकवि, सेवा में रस लेने वाले एवं संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले हैं॥९॥

अष्टादशवर्षप्राप्ते पायम्मया विवाहकृत् ।
श्रीपुरुषोत्तम-लक्ष्मी- सत्यभामा-पिताप्रियः॥१०॥

अठारह वर्ष की आयु में आपश्री का विवाह पायम्मा बहूजी के साथ हुआ एवं उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिनका नाम श्रीपुरुषोत्तमजी था और लक्ष्मी तथा सत्यभामा नाम की दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। आपश्री इन तीनों बालकों के अत्यन्त प्रिय पिताश्री थे॥१०॥

सर्वजनसंकटघ्नसामर्थ्यसंयुतः सदा ।
सर्वेषां दुःखहर्ता च निर्दम्भश्च कृपार्णवः ॥११॥

आप सभी (निज) जनों के संकट को दूर करने के सामर्थ्यवाले, सदा-सर्वदा सभी (निज) जनों के दुःखहर्ता, दंभरहित एवं कृपा के सागर हैं॥११॥

भागवततत्त्वज्ञाता सात्त्विकश्च ऋषिसमः ।
साधनदीपिकाग्रन्थ-वैष्णवमार्गप्रदर्शकः ॥१२॥

आप श्रीमद्भागवत के तत्त्व के ज्ञाता थे, एवं अत्यन्त सात्त्विक वृत्तिवाले तथा ऋषि के समान जीवन यापन करने वाले थे। आपने "साधनदीपिका" नामक ग्रंथ की रचना की, जो कि वैष्णवों का मार्गदर्शन करने वाला ग्रंथ है॥१२॥

सेवासन्ध्याजपहोमप्रणालिका-प्रदर्शकः ।
विचक्षणः कांतियुक्तो विद्यारसपरायणः ॥१३॥

आप प्रभु-सेवा, सन्ध्यावन्दन, जप एवं होम किस प्रकार करने चाहिए उनकी पद्धति के विषय में मार्गदर्शन देने वाले, परम निपुण विद्वान्, तेजस्वी एवं विद्यारूपी रस में अत्यन्त तत्पर रहनेवाले हैं॥१३॥

लघुभ्रातासुखदाता सौन्दर्यपदकारकः ।
परिवाराग्रजदृढ़ः श्रीपूर्णपुरुषोत्तमस्तथा ॥१४॥

आप अपने छोटे भाई गुसाँईजी श्री विट्ठलनाथजी को सुख देने वाले एवं

''सौन्दर्यपद'' के रचयिता हैं। अपने परिवार के सबसे बड़े पुत्र एवं दृढ़ है। आप श्रीपूर्णपुरुषोत्तम स्वरूप ही हैं॥१४॥

भ्रातृप्रेमाद्भुतयुतो, वैदिकाचारगामिनः ।
हरिसेवाप्रणालिका-सुव्यवस्थितकारकः ॥१५॥

आपश्री अद्भुत भ्रातृप्रेम से युक्त हैं। वेद में कहे अनुसार आचार (व्यवहार) करने वाले हैं और श्रीठाकुरजी की सेवा करने की पुष्टिमार्गीय रीति को सुव्यवस्थित करने वाले हैं॥१५॥

'सेवा श्लोका'-ग्रन्थकर्ता भावलीलानिरूपकः ।
कृष्णभक्तिप्रचारार्थ-देशपरिक्रमाकरः ॥१६॥

आचार्य श्रीगोपीनाथजी आप 'सेवाश्लोका' नामक ग्रन्थ के कर्त्ता हैं। आप श्री ठाकुरजी की सेवा के विविध भाव एवं लीलाओं का निरूपण करने वाले हैं तथा प्रभु श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रचार हेतु देश (भारत) की पैदल परिक्रमा आपने की है।

वैराग्यसंयुताचार्यो द्रव्यासक्तिपरिहृतः ।
लक्षरूपकोपहार परित्यज्य समर्पितः ॥१७॥

आप वैराग्य से युक्त आचार्य हैं। आप द्रव्य की आसक्ति का परित्याग करने वाले हैं। भारत की परिक्रमा में आपको एक लाख रुपये भेंट में प्राप्त हुए वह पूरी भेंट की राशि आपने श्रीगोवर्धननाथजी को भेंट स्वरूप वस्त्र, आभूषण इत्यादि सिद्ध करवाकर समर्पित कर दी।

नानारजतसुवर्णपात्राभूषणकारकः ।
श्रीगोपालमन्त्रपुरश्चरणपूर्णसाधितः ॥१८॥

आपने श्रीगोवर्धननाथजी की सेवा के लिये अनेक चाँदी एवं सोने के पात्र एवं आभूषण बनवाए थे तथा गोपालमंत्र का पुरश्चरण किया था। (पुरश्चरण अर्थात् किसी मंत्र का उस व्रत के नियमानुसार सवा करोड़ मन्त्रों का जप निश्चित अवधि में करना होता है तब पुरश्चरण संपूर्ण होता है।)

शालिग्रामहरिः साक्षाद्भगवद्रूपमेव हि ।

स्वानुचरवासुदेवछकडा उपदेशकः ॥२३॥

श्रीशालिग्रामजी वास्तव में साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है ऐसा उपदेश आप अपने सेवक श्री वासुदेवदास छकड़ा को देने वाले हैं॥२३॥

विप्रवंशमहाराजः प्रेमचतुरः पृथुधीः ।

सेवासांगोपांगविधि-सेवाभावनदर्शकः ॥२४॥

आपश्री विप्र वंश के महाराजा हैं। भगवत्-प्रेम रस आपश्री में प्रचुर मात्रा में था। आप उदार बुद्धिवाले हैं तथा सेवा की संपूर्ण विधि तथा सेवाभावना को बताने वाले हैं॥२४॥

श्रीवल्लभहार्दवेत्ता गूढ़भावप्रकाशकः ।

पितृचरणसकलसेवकादरसंयुतः ॥२५॥

आपश्री श्रीवल्लभाचार्यजी के हृदय के मर्म को समझने वाले, सेवा एवं लीला के गूढ़ भावों के विषय में बोध करने वाले, पिताश्री वल्लभाचार्य जी के सभी सेवकों के प्रति आप आदर रखने वाले हैं॥२५॥

पुरुषोत्तमसहस्रनामस्तोत्रस्य प्रापकः ।

विरुद्धधर्माश्रयस्य किल साक्षात्प्रतिकृतिः ॥२६॥

आपश्री सभी वैष्णवों को श्री पुरुषोत्तम सहस्रनाम नामक स्तोत्र को प्राप्त करवाने वाले हैं, तथा विरुद्धधर्माश्रय धर्म की यथार्थ रूप से आपमें झाँकी होती है॥२६॥

अविद्यविप्रसहायकः सपर्याप्रेमकारकः ।

भगवल्लीलागायकः श्रीहरिगुणगानकृत् ॥२७॥

आपश्री अनपढ़ निरक्षर ब्राह्मण के सहायक हैं, प्रेमपूर्वक श्रीठाकुरजी (भगवान्) की सेवा करने वाले हैं, आप भगवल्लीलाओं का तथा श्रीहरि के गुणों का गान करने वाले हैं।

''सौन्दर्यपद'' के रचयिता हैं। अपने परिवार के सबसे बड़े पुत्र एवं दृढ़ है। आप श्रीपूर्णपुरुषोत्तम स्वरूप ही हैं॥१४॥

भ्रातृप्रेमाद्भुतयुतो, वैदिकाचारगामिनः ।
हरिसेवाप्रणालिका-सुव्यवस्थितकारकः ॥१५॥

आपश्री अद्भुत भ्रातृप्रेम से युक्त हैं। वेद में कहे अनुसार आचार (व्यवहार) करने वाले हैं और श्रीठाकुरजी की सेवा करने की पुष्टिमार्गीय रीति को सुव्यवस्थित करने वाले हैं॥१५॥

'सेवा श्लोका'-ग्रन्थकर्ता भावलीलानिरूपकः ।
कृष्णभक्तिप्रचारार्थ-देशपरिक्रमाकरः ॥१६॥

आचार्य श्रीगोपीनाथजी आप 'सेवाश्लोका' नामक ग्रन्थ के कर्त्ता हैं। आप श्री ठाकुरजी की सेवा के विविध भाव एवं लीलाओं का निरूपण करने वाले हैं तथा प्रभु श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रचार हेतु देश (भारत) की पैदल परिक्रमा आपने की है।

वैराग्यसंयुताचार्यो द्रव्यासक्तिपरिहृतः ।
लक्षरूपकोपहार परित्यज्य समर्पितः ॥१७॥

आप वैराग्य से युक्त आचार्य हैं। आप द्रव्य की आसक्ति का परित्याग करने वाले हैं। भारत की परिक्रमा में आपको एक लाख रुपये भेंट में प्राप्त हुए वह पूरी भेंट की राशि आपने श्रीगोवर्धननाथजी को भेंट स्वरूप वस्त्र, आभूषण इत्यादि सिद्ध करवाकर समर्पित कर दी।

नानारजतसुवर्णपात्राभूषणकारकः ।
श्रीगोपालमन्त्रपुरश्चरणपूर्णसाधितः ॥१८॥

आपने श्रीगोवर्धननाथजी की सेवा के लिये अनेक चाँदी एवं सोने के पात्र एवं आभूषण बनवाए थे तथा गोपालमंत्र का पुरश्चरण किया था। (पुरश्चरण अर्थात् किसी मंत्र का उस व्रत के नियमानुसार सवा करोड़ मन्त्रों का जप निश्चित अवधि में करना होता है तब पुरश्चरण संपूर्ण होता है।)

मनोवाग्बुद्धिजगन्नाथोद्गारकारकः सदा ।
श्रीठक्कुरजगन्नाथस्वरूपे तु प्रवेशकृत् ॥१९॥

मन, वाणी एवं हृदय से आप सदा सर्वदा श्रीजगन्नाथ प्रभु के नाम का उद्गार करते रहते थे एवं अंत में आप श्रीजगन्नाथ प्रभु के स्वरूप में ही सदेह विलीन हो गये॥१९॥

कूपात् मदनमोहनस्वरूपसेव्यकारितः ।
द्वारकायां हरिसेवाभक्तिपोषणप्रापकः ॥२०॥

कुए में से (अहमदाबाद में आपश्री का मुकाम एक सांचोरा भक्त की घर की बाड़ी में था। उसमें एक कोने में कुआ था, उसी में श्रीमदनमोहनजी का स्वरूप विराजित है, उसे निकलवाकर सेवा प्रारंभ करवाइये, ऐसा आपश्री को स्वप्न हुआ। अतः आपश्री ने कुए में से श्रीमदनमोहन जी प्रभु का स्वरूप निकलवाया एवं उन्हें सेव्य करके बहुत बड़ा उत्सव मनाया। जब आपश्री द्वारका में यात्रार्थ पधारे तब द्वारका में श्रीद्वारकाधीश की सेवा करने लगे, इससे आपश्री की भक्ति को बहुत ही पोषण प्राप्त हुआ ॥२०॥

देवीदासउपाध्यायपुरोहितस्वीकारकृत् ।
जगन्नाथप्रियस्थानः सोमयागस्यकारकः ॥२१॥

आपश्री ने काशी में देवीदास उपाध्याय नामक विप्र को पुरोहित के रूप में स्वीकार करने का पत्र लिखा था। आपश्री को जगन्नाथपुरी प्रियस्थान था। आपश्री ने सोमयाग भी किया था॥२१॥

सर्वगुणपरिपूर्णो विष्णयागस्य कारकः ।
गुप्तलीलारसभावसंयुतश्च तमोपहः ॥२२॥

आप सर्वसद्गुणों से परिपूर्ण हैं, आप विष्णुयाग करनेवाले हैं। भगवल्लीला एवं भगवद्रस का भाव आपमें गुप्त रीति से विराजमान है। आप अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने वाले हैं॥२२॥

शालिग्रामहरिः साक्षाद्भगवद्रूपमेव हि ।
स्वानुचरवासुदेवछकडा उपदेशकः ॥२३॥

श्रीशालिग्रामजी वास्तव में साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है ऐसा उपदेश आप अपने सेवक श्री वासुदेवदास छकड़ा को देने वाले हैं॥२३॥

विप्रवंशमहाराजः प्रेमचतुरः पृथुधीः ।
सेवासांगोपांगविधि-सेवाभावनदर्शकः ॥२४॥

आपश्री विप्र वंश के महाराजा हैं। भगवत्-प्रेम रस आपश्री में प्रचुर मात्रा में था। आप उदार बुद्धिवाले हैं तथा सेवा की संपूर्ण विधि तथा सेवाभावना को बताने वाले हैं॥२४॥

श्रीवल्लभहार्दवेत्ता गूढ़भावप्रकाशकः ।
पितृचरणसकलसेवकादरसंयुतः ॥२५॥

आपश्री श्रीवल्लभाचार्यजी के हृदय के मर्म को समझने वाले, सेवा एवं लीला के गूढ़ भावों के विषय में बोध करने वाले, पिताश्री वल्लभाचार्य जी के सभी सेवकों के प्रति आप आदर रखने वाले हैं॥२५॥

पुरुषोत्तमसहस्रनामस्तोत्रस्य प्रापकः ।
विरुद्धधर्माश्रयस्य किल साक्षात्प्रतिकृतिः ॥२६॥

आपश्री सभी वैष्णवों को श्री पुरुषोत्तम सहस्रनाम नामक स्तोत्र को प्राप्त करवाने वाले हैं, तथा विरुद्धधर्माश्रय धर्म की यथार्थ रूप से आपमें झाँकी होती है॥२६॥

अविद्यविप्रसहायकः सपर्याप्रेमकारकः ।
भगवल्लीलागायकः श्रीहरिगुणगानकृत् ॥२७॥

आपश्री अनपढ़ निरक्षर ब्राह्मण के सहायक हैं, प्रेमपूर्वक श्रीठाकुरजी (भगवान्) की सेवा करने वाले हैं, आप भगवल्लीलाओं का तथा श्रीहरि के गुणों का गान करने वाले हैं।

तीर्थस्यवाऽवतीर्थदेवसमर्चनकरः ।

अन्याश्रयविषयकस्पष्टमार्गप्रदर्शकः ॥२८॥

आपश्री तीर्थ में रहने वाले ब्राह्मणों का तीर्थ के देवों की भाँति अर्चन करने वाले एवं अन्याश्रय तथा अनन्याश्रय के विषय में स्पष्ट मार्गदर्शन करनेवाले हैं॥२८॥

अन्य देव का आश्रय न लें किन्तु उनका अनादर भी न करें। अनन्य आश्रय एक का, आदर सभी का।

ब्राह्मणेतरपुष्टिस्थ कर्तव्यस्योपदेशकः ।

सधवाविधवापुष्टिधर्मभावप्रदर्शकः ॥२९॥

आपश्री द्विज के अतिरिक्त अन्य (अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) पुष्टिमार्ग के अनुयायियों को भी स्वकर्तव्य का उपदेश करने वाले, सधवा स्त्री को पतिभाव से श्रीकृष्ण का आश्रय करना चाहिए एवं विधवा स्त्री को पुत्र भाव से श्रीकृष्ण का आश्रय लेना एवं सेवा करनी चाहिए। इस धर्म भाव का उपदेश करने वाले हैं।

व्यंगांगिस्वरूपस्य तु सेवनाद्युपदेशकः ।

विरजश्चातिसरलश्च सहजस्तथा तितिक्षुः ॥३०॥

जो भगवत्स्वरूप खंडित हो गया हो तो भी यदि सेवा करने वाले का भाव बाधित न होता हो, ऐसी स्थिति में भी उस स्वरूप की सेवा करनी चाहिए; आप इस प्रकार का उपदेश करने वाले महापुरुष हैं। अत्यन्त निर्विकार, अत्यन्त सरल, सहज एवं सहनशील हैं॥३०॥

दृढाश्रयप्रतीकश्च स्थितप्रज्ञस्तथापि च ।

अहंकारविहीनश्च पापाचारविवर्जितः ॥३१॥

आपश्री दृढाश्रय के साक्षात् प्रतीक हैं तथा आप स्थिर बुद्धि वाले (स्थित प्रज्ञ) भी हैं एवं आप अहंकार से रहित हैं तथा पापयुक्त आचरण से पूर्णतः मुक्त हैं॥३१॥

'दासोऽहं' भावसुदृढो निजेच्छाधीनस्तथा ।
अनाग्रहीस्वाम्यधीनो दृढविश्वासधारकः ॥३२॥

आपश्री "मैं दास हूँ" ऐसे सुदृढ भाव वाले हैं एवं प्रभु की इच्छा के ही वशीभूत रहकर एवं किसी भी प्रकार के आग्रह से रहित होकर प्रभु में दृढ विश्वास करने वाले हैं। ॥३२॥

कलिदोषपरित्यक्तो भक्तसंदेहवारकः ।
अचर्षणी-अकैतवः सर्वसंशयवर्जितः ॥३३॥

आपश्री कलिकाल के दोषों का परित्याग करने वाले हैं एवं भक्तों के संदेह-शंकाओं का निवारण करने वाले हैं। आप सर्वदा प्रभुभक्ति में स्थिर भाव वाले एवं उसमें सुदृढ रुचि रखने वाले हैं। चालबाजी से सर्वथा रहित एवं सर्व संशयों से भी रहित हैं॥३३॥

विशुद्धभाव संयुतो भक्तक्लेशनिवारकः ।
निरपेक्षो निरवद्यो निरमर्षो निरंजनः ॥३४॥

आपश्री प्रभु में विशुद्ध भाव वाले, भक्तों के अलौकिक क्लेश का निवारण करने वाले, किसी भी प्रकार की अपेक्षा से रहित, किसी भी प्रकार के दोष या पाप से रहित, अक्रोधी, किसी भी प्रकार के राग-द्वेष से रहित हैं॥३४॥

रहःप्रियप्रेरितेन शंकरतनुजेन वै ।
वैकुण्ठदीनभक्तेन ग्रथितं दैन्यपूर्वकम् ॥३५॥

एकान्तप्रिय श्रीमहाप्रभु जी की प्रेरणा से श्रीशंकरलाल के पुत्र दीनकिंकर वैकुण्ठलाल भगत के द्वारा रचित यह स्तवन है॥३५॥

श्रीगोपीनाथशताब्दीमहोत्सवाब्दपर्वणि ।
अष्टोत्तरशतनाम्नां स्तवनं तु समर्पितम् ॥३६॥

श्री गोपीनाथजी के पंच शताब्दी महोत्सव वर्ष के पर्व पर यह १०८ नामों का स्तवन आपश्री को सादर समर्पित है॥३६॥

('वैष्णव परिवार' से साभार)

हिन्दी प्रस्तुति - डॉ. जया शुक्ल

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम् एको देवो देवकीपुत्रएव ।
मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि, कर्मप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥१॥

इति श्रीजगदीशेन महाप्रभु कृते स्वयम् ।
लिखितं पद्यमेतद्धि मायावादनिवृत्तये ॥२॥

बहिर्मुखो यदा नैवमेने विद्वज्जनातिगः ।
पत्रं निरूप्यतां भूयः प्राहैनं कृष्णसेवकः ॥३॥

तदा श्रीवल्लभाः प्रोचुःवयं नाग्रहवादिनः ।
त्वन्नः पुरोहितः साक्षी यथेच्छसि तथा कुरु ॥४॥

गुच्छिकारस्तदा तस्य प्रत्ययार्थं हरेः पुरः ।
पत्रं संस्थापयामासमसीपात्रं च लेखनीम् ॥५॥

यः पुमान् पितरं द्वेष्टि तं विद्याद् अन्यरेतसम् ।
यः पुमानीश्वरं द्वेष्टि तं विद्याद् अन्त्यजोद्भवम्' ॥६॥

भूयोऽपि जगदीशेन पत्रे विलिखितं त्विदम् ।
तदा बहिर्मुखो ध्वस्तः तथाज्ञातश्च सज्जनैः ॥७॥

इति श्रुत्वैव सद्वार्ता कृष्णसेवकपण्डितम् ।
श्रीवल्लभात्मजो गोपीनाथो मन्ये तथा ह्यमुम् ॥८॥

ख रस श्रुति भू (१४६०) संख्ये मासमाने शकेश्वरात् ।

लिखितं माधवामायां पूर्वेषां सम्मतं दलम् ॥९॥

''आन्ध्रदेशीयदीक्षितवल्लभाचार्येणे स्वपूर्वपुरुष-सोमयाजिगङ्गाधर-दीक्षितानां सम्मानितः श्रीमत्पुरुषोत्तमक्षेत्रे श्रीजगन्नाथ-सपर्याकुशलः गुच्छिकार-कृष्णसेवकाख्य-सेवापण्डितः, सोमयाजि-गङ्गाधर-दीक्षितानां स्वपूर्वपुरुषाणां सम्मानितइति स्वकीयैर् अवधार्य विष्णुपदेन्दु-श्रुति-धराशके (१४१०) समागतेन वल्लभदीक्षितेन वृत्तिदलं निरूपितं, श्रीवल्लभाचार्य-महाप्रभुवंशसम्भूतैः कृष्णसेवकवंशीयाः सम्मान्याः लिखितं दलमिदं ख-रस-श्रुति-भूमिते (१४६०) शालिवाहनशके वैशाखकृष्णामादिने''।

अंतर्राष्ट्रीय पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद्

जगद्गुरु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी महाप्रभु के शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग के प्रचार-प्रसार एवं वैष्णवों से संगठन के लिए सन् १९०६ में गो.श्री जीवनलालजी महाराजश्री (पोरबन्दर) के द्वारा पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद् की स्थापना हुई। इसके प्रथम कार्यकारी अध्यक्ष श्रीरणछोड़दास पटवारी बनाये गये।

सन् १९५६ में परिषद् को गो.श्री घनश्यामलालजी महाराजश्री (कामवन) की प्रेरणा से अखिल भारतीय स्वरूप मिला तथा १९५९ में सोसायटी एक्ट के अन्तर्गत अखिल भारतीय पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद् का पंजीयन हुआ।

सन् १९८१ में परिषद् की हीरक जयंती के अवसर पर पू.पा.गो. रणछोड़रायजी प्रथमेशजी महाराजश्री की प्रेरणा से परिषद् ने अन्तर्राष्ट्रीय पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद् का रूप ग्रहण किया, जिसका पंजीयन १९८५ में हुआ इसके प्रथम अध्यक्ष श्री विट्ठलदासजी काराणी बनाये गये।

आज भारत में ३५० शाखाओं के अतिरिक्त परिषद् यू.के., अमेरिका, केनाडा आदि देशों में भी कार्यरत है। परिषद् नित्य भगवद् सेवा, उत्सव सेवा, सेवा प्रशिक्षण, कीर्तन-प्रशिक्षण, धर्म संस्कार शिविर, मानव-सेवा के कार्यों (मेडिकल सहायता, दुष्काल, बाढ़ आदि प्राकृतिक आपदाओं के समय सहायता, निष्कंचन वैष्णवों को सहयोग) गौसेवा, आचार-विचार की जागृति आदि कार्य सम्पन्न कर रही है।

परिषद् की विशिष्ट स्थायी योजनाएँ

१. श्रीवल्लभ बाल विद्या निकेतन, झाबुआ (म.प्र.) - गो. रणछोड़ाचार्यजी प्रथमेश जी के द्वारा आदिवासी क्षेत्र में स्थापित यह माध्यमिक विद्यालय सन् १९८२ से शिक्षा एवं संस्कार-निर्माण का कार्य कर रहा है। संस्था का निजी दो मंजिला भवन है तथा वर्तमान में लगभग ४०० विद्यार्थी पढ़ रहे हैं। इस विद्यालय के छात्र-छात्राओं को शिक्षण हेतु दत्तक लेने की योजना है। आप १०००/- रुपये सहयोग राशि देकर एक विद्यार्थी को एक वर्ष के लिए दत्तक ले सकते हैं। एक विद्यार्थी को प्रतिवर्ष स्थायी रूप से दत्तक लेने के लिए स्थायी दत्तक योजना भी है। एक साथ पन्द्रह हजार रुपये देने पर आप प्रतिवर्ष एक विद्यार्थी को दत्तक ले सकते हैं। विद्यालय भवन के विकास की योजना है, जिसमें ११ लाख रुपये व्यय होंगे। इस योजना के लिए आर्थिक सहयोग के लिए भी निवेदन है।

२. **श्रीमद्वल्लभाचार्य ऋषिकुल, रतनपर राजकोट** - ग्राम रतनपर राजकोट में आवासीय विद्यालय (ऋषिकुल) चलाने की योजना है। इसके लिए परिषद् के पास १८४०० वर्ग मीटर भूमि है। इस पर ४८०० वर्गफीट में सत्संग भवन का निर्माण हो चुका है। यहाँ श्री पी.डी.गांधी इंग्लिश मीडियम प्रायमरी स्कूल परिषद् के अन्तर्गत संचालित है।

३. **श्रीवल्लभ गौशाला-गोवर्धन जतीपुरा (परिक्रमा मार्ग)** -परिषद् द्वारा संचालित इस गौशाला में लगभग ९० गायें हैं, जिनमें से कुछ ही दूध देती हैं। इनका दूध भी श्री गिरिराजजी, श्रीमहाप्रभुजी की बैठकजी तथा गायों की सेवा करने वाले ग्वालों को दिया जाता है। इस गौशाला का मासिक व्यय ९० हजार से एक लाख रुपयों के बीच आता है। आप अपने घर बैठकर भी गौसेवा में सहयोगी बन सकते हैं। एक गाय की एक दिन की सेवा ७० रुपये, एक सप्ताह की सेवा ५०१/-, पन्द्रह दिन की सेवा १००१ रु, एक माह की सेवा १५०१/-, छः माह की सेवा ८००१ रु., एक वर्ष की सेवा रु.१५००१ है। स्थायी गौसेवा की तिथि के लिए रु. १२५०१ जमा करवा सकते हैं।

४. **कीर्तन विभाग**- परिषद् (वल्लभ कृपा कीर्तन मंडल) के द्वारा सुप्रसिद्ध कीर्तनकार श्रीजमनादास जी शर्मा के द्वारा कीर्तन प्रशिक्षण हेतु सी.डी.-एम पी-३ में ऋतु अनुसार भावानुवाद सहित तैयार की गयी है। 'श्याम घटा घिर आयी, शीतकाल सुहावनो, ग्रीष्म युगल सुखदायी, होरी खेले व्रजराज, झूलिये नेक धीरे-धीरे और श्याम सजनी सरद रजनी' नाम से ऋतु-अनुसार भगवत् सेवा की सीडी उपलब्ध है। इसके अलावा प्रवेशिका, प्रबोध, सुबोध, प्रवीण और विशारद क्रमशः पाँच परीक्षाएँ ली जाती हैं।

५. **प्रकाशन विभाग**- परिषद् द्वारा हिन्दी में श्रीवल्लभ प्रकाशन न्यास, इन्दौर के द्वारा हिन्दी में तथा गुजरात राज्य परिषद् द्वारा गुजराती में पुष्टि साहित्य का सतत् प्रकाशन होता है। हिन्दी में **'श्रीवल्लभ चिन्तन'** त्रैमासिक पत्रिका का भी प्रकाशन होता है।

★ परिषद् की सदस्यता ★

संरक्षक सदस्य रु. ५०००/-, आजीवन सदस्य रु.५००/, वार्षिक सदस्य रु. १००/-

सम्पर्क

★ केन्द्रीय समिति ★ केन्द्रीय अध्यक्ष-डॉ. गजानन शर्मा,
कार्यकारी अध्यक्ष-बटुक भाई वी.शाह, मंत्री-प्रदीप भाई गाँधी

★ **केन्द्रीय कार्यालय** ★ **अन्तर्राष्ट्रीय पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद्,** १५-ई हालाई लोहाणा निवास, रघुवंशी हाल के ऊपर शंकर बारी लेन, जे.एस.एस. रोड़ के पास, चीरा बाजार, मुंबई-४००००२

★ **महाराष्ट्र राज्य समिति** ★ अध्यक्ष-बटुक भाई वी.शाह, कार्यकारी अध्यक्ष-प्रदीपभाई गांधी,मंत्री-केतन भाई मेहता

★ **महाराष्ट्र राज्य समिति कार्यालय** ★ केन्द्रीय कार्यालय के पते पर ही पत्र-व्यवहार करें।

★ **गुजरात राज्य समिति** ★ अध्यक्ष-अशोक भाई कृ. परीख, कार्यकारी अध्यक्ष-इन्द्रकांत भाई त्रि. परीख, मंत्री-गोपालभाई एस.शाह

★ **गुजरात राज्य समिति कार्यालय** ★ श्री कृष्णदास चीमनलाल (झवेरचन्द लक्ष्मीचंद) परिषद् भवन, २०१, अश्वमेध काम्प्लेक्स, बीजे माले, खंडेराव मार्केट पासे , सयाजी विहार क्लब सामे, राजमहेल रोड़, वड़ोदरा-३९०००१ (गुजरात)

★ **मध्यप्रदेश समिति** ★ अध्यक्ष-बद्रीलाल चौधरी, कार्यकारी अध्यक्ष-डॉ.ओमप्रकाश यादव, मंत्री-लक्ष्मीनारायण नीमा

★ **मध्यप्रदेश राज्य समिति कार्यालय** ★ **अन्तर्राष्ट्रीय पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद्** , आगर रोड़, मोहन बडोदिया, जिला-शाजापुर, पिन-४६५२२६

तलाटी मार्केटिंग कंपनी

394/2, महारानी रोड, एलोरा टॉकीज के सामने, इन्दौर (म.प्र.)

फोन : 2538203, 9425320802

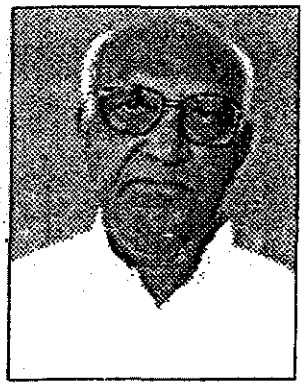

कनुभाई तलाटी

कनुभाई तलाटी-कुसुमबेन तलाटी

प्रकाशभाई तलाटी-विलासबेन तलाटी

ब्रजेश तलाटी-प्रीति तलाटी

एवं परिवार का

सादर जय श्रीकृष्ण

अंतर्राष्ट्रीय पुष्टिमार्गीय वैष्णव परिषद् शाखा बड़वानी द्वारा प्रकाशित
डॉ. ओमप्रकाश यादव द्वारा लिखित पठनीय पुस्तकें

1. अष्टसखा	न्यौछावर 50/-	6. पुष्टि पुरुषोत्तम बालकृष्ण	न्यौछावर 10/-
2. श्री वल्लभ साखी	न्यौछावर 15/-	7. पुष्टिमार्ग में नित्य सेवा	न्यौछावर 15/-
3. पुष्टिमार्ग (लघुपुस्तिका)	न्यौछावर 2/-	8. पुष्टि जिज्ञासा और समाधान	न्यौछावर 10/-
4. पुष्टिवैभव	न्यौछावर 10/-	9. हरिदासवर्य श्री गिरिराज गोवर्धन	न्यौछावर 20/-
5. श्री यमुने -	न्यौछावर 25/-	10. गुसांई श्री विट्ठलनाथजी	न्यौछावर 45/-

पुस्तक प्राप्ति हेतु सम्पर्क

डॉ. ओमप्रकाश यादव
अधीक्षक, शा. इन्द्रजीत छात्रावास, बड़वानी (म.प्र.) 451 551
फोन-7290 222519, मोबा. 9425450115

अलंकार ज्वेलर्स

22, बड़ा सराफा, इन्दौर (म.प्र.) फोन नं. 2542375, 2560776

प्रहलाद नीमा

प्रहलाद नीमा-प्रेमलता नीमा
संजय नीमा-पूर्णिमा नीमा
अजय नीमा-मंजू नीमा
एवं परिवार का

सादर जय श्रीकृष्ण

शिवकिशन मिन्दाराम चेरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई

ट्रस्ट के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

पुष्टिमार्गीय हिन्दी पुस्तकें

भगवदीय महिलाएँ

पुष्टिभक्त नारियाँ

कृपापात्र नारियाँ

श्री वल्लभनन्दन गोपीनाथजी प्रभुचरण

वैष्णवों की हिन्दी ग्रन्थों में रुचि होने पर ही प्रकाशन का क्रम निरन्तर जारी रह सकता है। कृपया ग्रंथ खरीद कर सहयोग प्रदान करें। ग्रंथ-श्री वल्लभ प्रकाशन इन्दौर से उपलब्ध हो सकते हैं।

मोहनलाल दमानी एवं ट्रस्टियों के सप्रेम जयश्रीकृष्ण

शान्ता-श्यामसुन्दर झँवर स्मृति प्रकाशन इन्दौर

की ओर से प्रकाशित पुस्तकें

(1) रामहि सुमिरिअ गाइय रामहिं

(2) श्रीमद्वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग

(3) श्री रामानुजाचार्य एवं श्री सम्प्रदाय

(4) रामकाज करिबे को आतुर श्री हनुमान

ग्रंथ श्री वल्लभ प्रकाशन न्यास, इन्दौर से उपलब्ध होंगे

विनय मोहन झंवर, विजय कुमार झंवर, विवेक झंवर एवं वैभव विनोद झँवर के सादर जय श्रीकृष्ण